नरक और स्वर्ग

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ

नरक

और

स्वर्ग

डॉ० गणेश खरे

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
नई दिल्ली

प्रकाशक :
भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
17-बी, इन्द्रप्रस्थ मार्ग
नई दिल्ली-110002

मूल्य : 2/- रुपये

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
की आर्थिक सहायता से
प्रकाशित

सम्पादन :
डॉ० सुशील गौतम

पुस्तक शृंखला संख्या : 128

मुद्रक :
रणजीत प्रेस,
३०१, दरीवा कलां,
दिल्ली-११०००६
फोन : २६२६१३

प्रस्तावना

प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में साक्षर बन जाना कोई इतना कठिन कार्य नहीं, जितना कठिन कार्य उस साक्षरता के ज्ञान को बनाये रखना है। साक्षरता के साथ अपने आप को जोड़े रखने के लिए नवसाक्षरों को अपनी रुचि के अनुसार साहित्य नहीं मिलता। नतीजा यह निकलता है कि वे, प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्रों में जो कुछ सीख कर आते हैं, अनुवर्ती साहित्य के अभाव के कारण, सब कुछ भूल जाते हैं। भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ इस दिशा में पहले से ही प्रयास करता आ रहा है। पिछले वर्ष इसने नव-साक्षरों के लिए दस पुस्तकें प्रकाशित की थीं। इस वर्ष भी भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ इसी साहित्य माला के अन्तर्गत पांच पुस्तकें प्रकाशित कर रहा है, जो उसके पहले प्रयास की दूसरी कड़ी है। यह प्रयास इस प्रकार के साहित्य के अभाव की पूर्ति के लिए एक ठोस कदम है। इन पांचों पुस्तकों में लेखकों ने जीवन की समस्याओं को अपनी सरल भाषा में प्रकट किया है। इन्हें पढ़कर नव-साक्षरों में न केवल अक्षर-ज्ञान को बराबर बनाये रखने की भावना बनी रहेगी, बल्कि अपनी कार्य-क्षमता को बढ़ाने और सामाजिक तथा राजनैतिक चेतना को ग्रहण करने का भी उनमें उत्साह पैदा होगा। अतः ये पांचों रोचक रचनाएं नव-साक्षर भाई-बहिनों का मन तो बहलायेंगी ही, साथ ही उनके जीवन के व्यावहारिक पक्ष में अपनी उपयोगिता भी साबित करने में सफल होंगी। क्योंकि इनमें उन्हीं बातों का वर्णन किया गया है, जो उनके दैनिक जीवन के कई पक्षों से जुड़ी हुई हैं। ये सभी रचनाएं 'राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम' के अन्तर्गत ही प्रकाशित की गयी हैं।

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ, प्रौढ़ शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में अपने कर्त्तव्य का पालन करता आ रहा है। अपनी इन्हीं महान् परम्पराओं के

अनुसार इसने नव-साक्षर भाई-बहिनों के लिए अनुवर्ती साहित्य तैयार करने के वास्ते इन्दौर में 6 मई से 9 मई 1979 को एक "लेखक कार्यशाला" का आयोजन किया। इस कार्यशाला का विधिवत् उद्घाटन विक्रम विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति तथा हिन्दी के प्रख्यात कवि डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने किया। इसके समापन समारोह की अध्यक्षता, इन्दौर विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० देवेन्द्र शर्मा ने की।

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ, भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय का बहुत आभारी है कि उसने इस कार्यशाला के आयोजन और पुस्तकों के प्रकाशन के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की।

संघ उन सभी व्यक्तियों और संस्थाओं का भी आभारी है, जिन्होंने इस कार्यशाला की सफलता में अपना पूरा-पूरा सहयोग दिया।

आशा है पाठकों को ये रचना अवश्य ही पसन्द आयेंगी।

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ,
17-बी, इन्द्रप्रस्थ मार्ग,
नई दिल्ली-110002

29 फरवरी, 1980

वी० एस० माथुर
अवैतनिक महासचिव

नरक और स्वर्ग

"पंडित जी ! नरक और स्वर्ग में क्या अन्तर है ? क्या नरक को भी स्वर्ग बनाया जा सकता है ?" केवलारी गाँव के वंशी पटेल ने पं० दुर्गानारायण से प्रश्न किया ।

रुई की तरह हल्की और रेशम की तरह कोमल ठंड प्रारम्भ हो गई थी । सूखे हुए गुलाब के फूलों की तरह सिकुड़कर दिन छोटे होने लगे थे । दिन भर सहकारी क्षेत्रों पर काम करने के बाद पठार की तरह लम्बी रातें काटने के लिए गांव के किसानों तथा मजदूरों के पास अब एक ही साधन रह गया था—अलाव के चारों ओर बैठकर कथा-कहानियां सुनना और सुनाना या अपनी जिज्ञासाओं को शान्त करना । केवलारी गांव की यह रोज की बात थी । आज भी पं० दुर्गानारायण के घर के सामने जलते हुए एक बहुत बड़े अलाव के चारों ओर अनेक महिलायें, बूढ़े और नवयुवक बैठे हुए थे । वंशी पटेल का प्रश्न सुनकर पंडित दुर्गानारायण ने कहा—

"एक कहावत है कि बिना करे काम नहीं होता और बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता' पर सच पूछा जाये तो स्वर्ग या नरक पाने के लिए मरना जरूरी नहीं है। मनुष्य अपने कार्यों से ही स्वर्ग या नरक का निर्माण करता है। सुनो, इस संबंध में हम एक कहानी सुना रहे हैं।"

"महाराजा युधिष्ठिर का नाम आप सबने जरूर सुना होगा। उन्होंने अपने जीवन में केवल एक बार झूठ और वह भी आधा सच, आधा झूठ बोला था। इतने से ही अपराध के कारण यमराज ने उन्हें एक क्षण के लिए नरक में रहने का दण्ड दिया था।" असल में हुआ यह था कि जैसे ही महाराजा युधिष्ठिर इन्द्र के दिव्य रथ पर बैठ कर सशरीर स्वर्ग पहुंचे तो वहां उन्होंने यमराज से पूछा—

"सहदेव, नकुल, अर्जुन, भीम, द्रौपदी आदि कहां हैं ?

"ये सब तो नरक में हैं महाराज !" यमराज ने उत्तर दिया।

"नरक में ? क्यों ?" युधिष्ठिर ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

"महाराज ! ये सबके सब अज्ञानी और अहंकारी थे। कोई किसी से अधिक प्रेम करता था, कोई किसी से मन ही मन घृणा, ईर्ष्या या द्वेष करता था; किसी को अपनी सुन्दरता का घमण्ड था तो किसी को अपनी शक्ति और किसी को अपनी विद्या का। इसीलिए ये सब नरक में चले गये।" यमराज ने उत्तर दिया।

"तब मैं अकेला स्वर्ग के सुख का उपभोग नहीं करना चाहता। मेरे भाई जिस नरक में निवास कर रहे हों, मैं भी वहीं जाना चाहता हूं। कृपा कर मेरे वहां जाने की व्यवस्था करा दें।" युधिष्ठिर ने दृढ़तापूर्वक कहा। फलतः यमराज ने अपने देवदूत-जय को अपने पास बुलाया और उसे आदेश दिया कि महाराज युधिष्ठिर को एक क्षण नरक दिखाकर वापस ले आयें। "जो आज्ञा" कहकर जय युधिष्ठिर के साथ नरक जाने के लिए तैयार हो गया। उसने निवेदन किया--"महाराज ! नरक की यात्रा पैदल

करेंगे या रथ में बैठकर ?"

"पैदल ।" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया ।

यमराज तथा इन्द्र से विदा लेकर युधिष्ठिर जय के साथ नरक लोक की दिशा में चल पड़े । स्वर्ग की सीमा तक रास्ते बच्चों के हृदय की तरह साफ, सीधे और सरल थे । उनके दोनों ओर मां के आंचल की तरह सुखद और शीतल छायादार पेड़ लगे हुए थे । दो प्रेमियों की मीठी बातों की तरह सुखद हवा बह रही थी और मधुर कामनाओं की तरह सुगन्धित फूलों की कतारें मन को अपनी ओर खींच रही थीं । जय कुछ जिज्ञासु प्रकृति का था । सुन्दर और शान्त वातावरण देखकर उसने युधिष्ठिर से प्रश्न किया--"महाराज ! आपको अपने किन गुणों के कारण स्वर्ग में सशरीर आने का यह दुर्लभ लाभ प्राप्त हुआ है ?" "जय ! मैंने कभी किसी की निन्दा नहीं की । किसी की अनुचित प्रशंसा भी नहीं की । किसी की उपेक्षा भी नहीं की । किसी से अपेक्षा भी नहीं की । किसी के साथ पक्षपात नहीं किया । किसी को पराया भी नहीं समझा । सदा सच बोलता रहा हूं । मधुर बोलता रहा हूं और दूसरों को दुख पहुंचाने वाले अप्रिय सच से बचता भी रहा हूं । मैंने अपने कर्तव्यों को कभी अनदेखा नहीं किया और अपने अधिकारों के लिए कभी दूसरों के सामने हाथ भी नहीं पसारा । संघर्ष से मैं कभी दूर नहीं भागा और अधर्मपूर्वक कुछ पाने का प्रयत्न भी नहीं किया ।"

"क्या ऐसी भी कोई घटना आपके जीवन में घटी जिसका आपको पश्चाताप या दुःख हुआ हो ?"

"हां, केवल एक बार मेरे मुख से आधा सत्य निकल गया था, जिसका मुझे आज तक पछतावा है । उस आधे

सत्य के कारण ही गुरुवर द्रौणाचार्य ने अपने प्राण त्याग दिये थे। आज जब इस नरक लोक की यात्रा पर निकला हूं तो मुझे उस घटना का भी कोई दुःख नहीं रहा। सच पूछा जाये तो दुःख मुझे अपने में कभी बांध ही नही सका। मैं तो जीवन भर यह मानकर चलता रहा हूं कि हर घटना जीवन में एक अच्छा परिणाम लाती है। उस दिन यदि मैं अर्द्ध सत्य न बोलता तो शायद आज मैं नरक देखने के सुख से भी वंचित रह जाता। नरक मानव जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा है, उसे बिना देखे कोई भी उससे मुक्त नहीं हो सकता।" युधिष्ठिर ने कहा।

बातों ही बातों में स्वर्ग की सीमा कब समाप्त हो गई। किसी को पता ही न चला युधिष्ठिर उस समय ठिठके जब उन्होंने अपने सामने दुर्योधन और दुःशासन के भावों और विचारों की तरह ऊबड़-खाबड़ रास्ते देखे। उन्होंने जय से प्रश्न किया–"हम कहां पहुंच गये हैं जय !"

"महाराज ! यह नरक का प्रवेश द्वार है।" जय ने उत्तर दिया।

इस समय रिमझिम-रिमझिम वर्षा प्रारम्भ हो गई थी। चारों ओर कीचड़-कांटों और दलदल का अन्तहीन राज्य था। राजा युधिष्ठिर पानी से बुरी तरह भीग चुके थे। अभी मुश्किल से पच्चीस कदम चले होंगे कि कीचड़ में फिसलकर वे चार-पांच बार गिर भी चुके थे। उनका सोने का मुकुट कीचड़ में सन कर फेंकने लायक हो गया था। कीचड़ और कटीली झाड़ियों में फंस कर उनके जरी लगे रेशमी कपड़े तार-तार हो गये थे। अपने माथे पर से पसीने की बूदें पौंछते हुए उन्होंने पूछा– "जय ! ऐसा गंदा रास्ता और कितना चलना पड़ेगा ?"

"महाराज ! यह तो आरम्भ है। इस देश में ८० प्रतिशत रास्ते तो ऐसे ही हैं और इससे भी बदतर हालत में हैं।" जय ने कहा।

इसी समय युधिष्ठिर के पैर में एक कांटा चुभा। वे कराह उठे– "जय ! मुझे ऐसा लग रहा है कि जैसे मेरे पैर में अर्जुन का कोई बाण चुभ गया हो !"

"महाराज ! आपकी सोने से जड़ित चरण पादुकाओं का क्या हुआ ?"

"वे तो न जाने कब और कहां कीचड़ में धसकर रह गई हैं। मैं अब नंगे पैर ही चल रहा हूं।" तभी उन्होंने अपने पैर से कांटा निकालकर जय से पूछा–"देखो ! यह

वाण की नोक की तरह पैना, छोटा-सा सफेद तीर ! क्या कहते हैं इसे ?"

"महाराज ! इसे बबूल का कांटा कहते हैं।"

इसी बीच युधिष्ठिर फिर चिल्लाये– "जय ! मुझे बचाओ, मेरे दूसरे पैर में भी कुछ विष की तरह बहुत गहराई तक धसता चला जा रहा है।" जय ने उनका पैर उठाकर देखा और कहा–"महाराज ! इसे नागफनी का कांटा कहते हैं। यमराज ने जानबूझकर इसे नरक की राहों में उगाया है। अब यह कांटा पैर के भीतर ही सड़ेगा और मांस को गलाकर साल-दो-साल में मुश्किल से बाहर निकलेगा !"

"क्या तब तक यह ऐसा ही चुभता रहेगा ?"

"नहीं महाराज ! इसकी चुभन अब प्रतिदिन बढ़ती ही जायेगी। यह खुद सड़ेगा और जिस अंग में लगा है, उसे भी सड़ायेगा !"

"क्या ये कांटे यहां के लोगों को नहीं चुभते ?"

"बहुत चुभते हैं और रोज-रोज चुभते हैं महाराज ! जब बार-बार मनुष्य को एक जैसी तकलीफें मिलती हैं तो वह उनसे भी प्रेम करने लगता है। यही हाल यहां के लोगों का है।" "यहां के लोग इन रास्तों को ठीक तरह से साफ क्यों नहीं कर लेते ?"

"आलस्य के कारण महाराज !"

"आलस्य तो जीवन का परम शत्रु कहा गया है।"

"पर महाराज ! वह यहां के लोगों का परम मित्र है।" जय ने कहा।

"बड़ा विचित्र लोक है यह ?" कहते हुए युधिष्ठिर अभी थोड़ी ही दूर गये थे कि उन्हें सामने से आदमियों का

झुंड आता हुआ दिखाई दिया। उनके हाथों में लाठियां थीं और शरीर पर कपड़े के नाम से लंगोटियां। न उन्हें पानी की चिन्ता थी, न कीचड़ की और न कांटों की। वे परम प्रसन्न स्थिति में गाते हुए नंगे पैर चले आ रहे थे– **"मेघा बरस पड़े मोरी मैया। कौन पेड़ तरे ठाड़े होंगे राम लखन दोऊ भैया।"**

"आश्चर्य जय ! महान् आश्चर्य ! इतनी गंदी जगह में भी ये संतों की तरह प्रसन्न हैं। ये बड़े साहसी और संतोषी हैं। इस दशा में भी इन्हें अपनी नहीं राम लक्ष्मण की चिन्ता है। जय ! इन्हें रोको, मैं इनसे बात करना चाहता हूं।" युधिष्ठिर ने कहा।

जय ने राहगीरों को रोकते हुए कहा–"रुको, इन्हें देखो, पहचानों। ये राजाओं के राजा, चक्रवर्ती सम्राट महाराजा युधिष्ठिर हैं।"

नरकवासी आश्चर्यचकित होकर उन्हें देखने लगे। एक बूढ़े ने आगे बढ़कर उन्हें नमस्कार किया और कहने लगा–"अच्छा, आप हैं युधिष्ठिर ! क्या वही युधिष्ठिर हैं जिन्होंने अपना सुख, अपनी सत्ता, अपनी कुर्सी, अपना पद पाने के लिए १८ अक्षौहिणी सेना को कटवा दिया था ? और छल कपट पूर्ण महाभारत को धर्मयुद्ध कहा था ? अब कीजिए महाराज वैतरिणी पार, तब पता चलेगा कि आप कितने सत्यवादी और धर्मात्मा रहे हैं ?"

दूसरे ने कहा— "महाराज ! आपका सत्य ही सत्य नहीं था। गरीब जनता का सत्य भी सत्य होता है पर आपको तो अपना ही अभिमान, अपना ही पक्ष, अपना ही प्रतिशोध सबसे बड़ा दिखाई दे रहा था ! अब भोगो नरक की यातना।"

तभी तीसरा बोल उठा—"ओ महाराज ! आप तो जुए में अपना राज-पाट और पत्नी भी हार गये थे। हमने तो जुआ नहीं खेला था पर अकाल के समय लगान न दे सकने के कारण तुम्हारे कारिन्दे आकर मेरी सारी धन-सम्पत्ति और पत्नी के वस्त्र तक उठा ले गये। क्या आपने हमारे लिए भी कोई महाभारत लड़ा ?"

चौथा कहने लगा—"राजन् ! आप तो धर्मात्मा हैं ! फिर यहां कैसे आ गए ? क्या अपनी प्रजा की कराहें सुनने आये हैं ? या हम सब के मुंह से एक बार फिर अपनी जय-जयकार सुनना चाहते हैं ? सच है मर कर और मार कर भी राजाओं की इच्छायें कभी पूरी नहीं होतीं।

तभी जय ने निवेदन किया—"महाराज ! हमें इन्हें देखने की आज्ञा मिली है, छेड़ने की नहीं। हम लोग आगे बढ़ें।" ज्यों ही युधिष्ठिर आगे बढ़े तो वह भुण्ड ठहाका-मारकर हँस पड़ा। पांचवा व्यक्ति कहने लगा—"बड़ा तीस-मार खां बनता है ? सत्यवादी, धर्मवादी युधिष्ठिर ? सोचता होगा कि हमने छल-छंद से कौरवों को जीत लिया तो हम लोगों को भी जीत लेगा ?"

रास्ते में युधिष्ठर ने कहा—"जय ! मेरा इतना अपमान कर्ण और दुर्योधन ने भी नहीं किया ? उन्होंने भी इतने तीखे और कड़े शब्द नहीं कहे। अर्जुन ने भी मेरी कायरता की इतनी बुरी तरह से निन्दा नहीं की।"

दिन भर की अत्यंत कठिन यात्रा के बाद ये संध्या के समय वैतरिणी के पास पहुंच गये। युधिष्ठिर ने वहां देखा कि लाखों करोड़ों पापी एक दूसरे को ठेल रहे हैं, कुचल रहे हैं। वहां किसी भी प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं थी। कोई किसी की बात सुनने के लिए खाली भी नहीं था।

चीख-चिल्लाहटों में सारा वातावरण बुरी तरह डूबा हुआ था। कुछ पाखंडी पण्डे यहां भी घूम रहे थे, जो मोटी-मोटी रकमें लेकर नाव द्वारा वैतरिणी पार करा देने का लोभ दे रहे थे। बहुत मुश्किल से युधिष्ठिर नदी के किनारे पहुंच सके। वहां एक पण्डे ने उनसे कहा—"जीवन में कभी तुमने कोई पुण्य या अच्छा कार्य किया हो तो उसे याद करो। वही तुम्हें इस नदी के उस पार पहुंचायेगा। पर याद रखना वह दान, पुण्य या कर्म सच्चे मन से किया गया हो, उसमें तुम्हारा कोई स्वार्थ, कोई अहंकार, कोई कामना छिपी नहीं होनी चाहिए। आधे मन से किया गया दान-पुण्य तुम्हें नदी में आधी दूर ही ले जाकर छोड़ देगा और फिर तुम इस गहरी, तेज और गंदी नदी में हाथ-पैर पटकते हुए कीड़े-मकोड़ों की तरह बिलबिलाते बरसों तक सड़ते रहोगे। वहां तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता, भले ही तुम सत्यवादी, धर्मराज युधिष्ठिर ही क्यों न हो ?"

"जय ! क्या कोई मनुष्य इस नदी को लांघकर उस पार नहीं जा सकता ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"जो मनुष्य अपने मन को वश में कर लेता है, जो कर्म करते हुए भी उसके फल की चिन्ता नहीं करता, वही जा सकता है महाराज ! आप तो महाभारत करते हुए भी शान्ति के पक्षपाती रहे हैं, राज्य पाने पर भी उससे विरक्त रहे हैं। अतः आप इसे हवा-मार्ग द्वारा पार कर सकते हैं। आइये हम लोग चलें।" जय ने कहा।

आकाश-मार्ग से जाते हुए युधिष्ठिर ने देखा कि उस नदी में भी लाखों-करोड़ों मनुष्य डूबते-तैरते, चीखते-चिल्लाते और उछल-कूद मचाते हुए दिखाई दे रहे हैं। तभी जय ने कहा—"महाराज ! आपके पाँचों भाई, द्रौपदी और सौ

कौरव भी इसी नदी की धारा में उस तरफ आपस में झगड़ा करते हुए दिखाई दे रहे हैं। ये सभी काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, अहंकार, तृष्णा आदि वासनाओं की नदी में इसी तरह जीवन भर डूबे रहे हैं फिर भी तृप्त नहीं हो सके। अतः अब यहां भी अपनी वासनाओं की वैतरिणी में गोते लगा-लगाकर स्वयं को तृप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

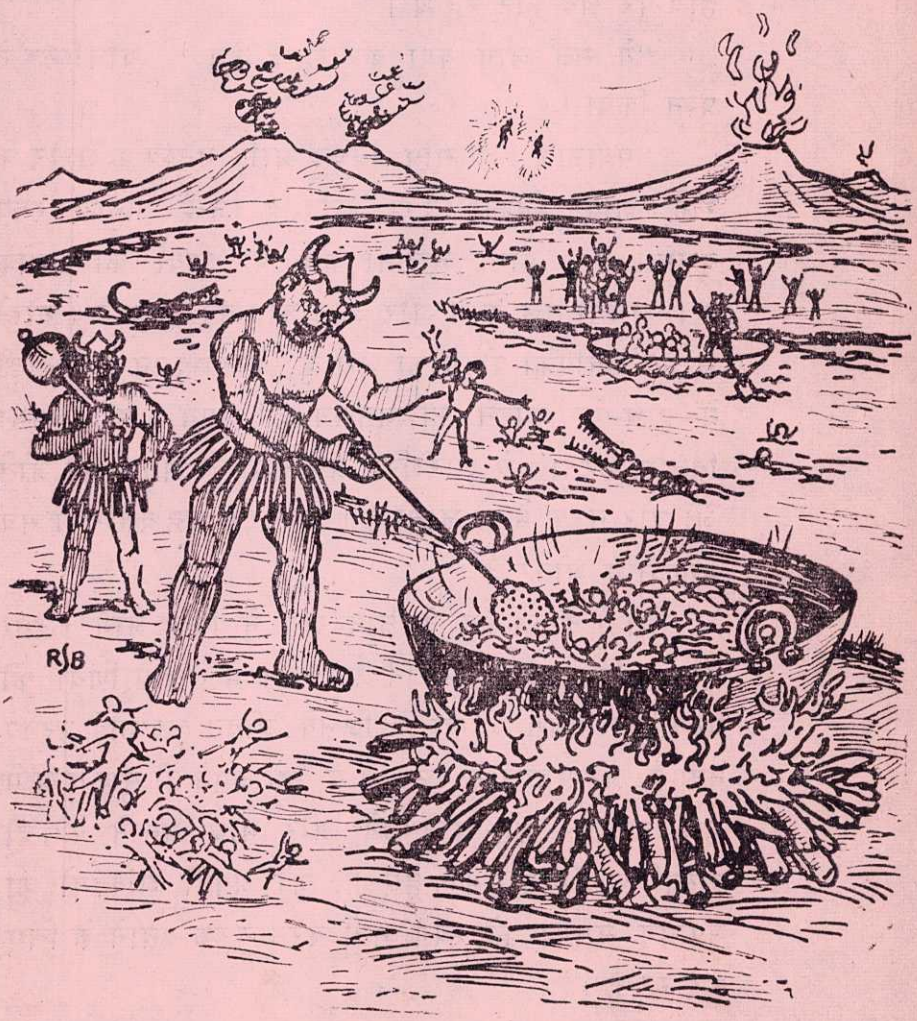

युधिष्ठिर ने देखा कि उस नदी का पाट बहुत चौड़ा है। आदमी की जितनी लम्बी उम्र; उतना ही चौड़ा उसकी वासनाओं का पाट। उस नदी में उन्हें कुछ टापू भी दिखाई दिये जहां कुछ मनुष्य अपने शरीर को कुत्तों, सांपों, बिच्छुओं आदि से कटवा रहे थे कुछ अपने शरीर पर खुद आरे चला रहे थे ; कुछ खौलते हुए तेल में अपने आपको पकौड़े की तरह पका रहे थे। कुछ कुल्हाड़ी लेकर अपने हाथ-पैर खुद काट रहे थे।

"ये सब लोग क्या कर रहे हैं जय !" युधिष्ठिर ने प्रश्न किया।

"महाराज ! ये सांप, बिच्छु आदि मनुष्य के शरीर के रोग, शोक, चिन्ता, दुःख आदि हैं जिन्हें मनुष्य स्वयं बुलाता है। आरा चलाना द्वेष या ईर्ष्या का प्रतीक है। खौलता तेल काम और आग क्रोध की सूचक है। कोड़ों से अपने आपको पीटने का अर्थ है—आत्म-दमन। कुल्हाड़ी से हाथ-पैर काटने का मतलब है—अपने हाथों अपना विनाश करना। ये शारीरिक प्रवृत्तियां ही मनुष्य को जीते जी घोर नरक में ले जाती हैं। यह नरक, यह वैतरिणी सब मनुष्यों के भीतर है।

थोड़ी देर रुकने के बाद जय ने फिर आगे कहना प्रारम्भ किया—"महाराज! इस लोक में ऐसे प्राणियों की संख्या ही सबसे ज्यादा है, जिनके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं है, जो समाज से कटे हुए हैं, जो अपने ही सुख-दुःख में भूले हुए हैं, जो खाने-पीने और मौज मनाने को ही वास्तविक जीवन समझे हुए हैं, जो अपनी शक्तियों का उपयोग समाज को स्वर्ग नहीं वरन् नरक बनाने के लिए कर रहे हैं।"

इसी समय जय ने सूचना दी कि महाराज ! अब हम लोग वैतरिणी पार कर कर्म लोक की सीमा में प्रवेश कर रहे हैं ।

यहां पं० दुर्गानारायण कुछ देर रुके । उन्होंने देखा कि अंधकार को दुर्गा देवी की मूर्ति के रूप में तराशता हुआ अलाव का प्रकाश अभी भी तेजी से जल रहा है । आधी रात का तारा आकाश में सौभाग्य की तरह झिलमिलाने लगा है । किन्तु अभी वहां उपस्थित किसी व्यक्ति की आंखों में नींद का नाम-निशान तक न था । पंडित जी को कुछ शांत देखकर वंशी पटेल ने कहा—"पंडित जी ! क्या हमारे मन की बुरी भावनाएं ही हमें नरक की तरह कष्ट देती हैं ?" कन्हैया हरिजन ने कहा--"पंडित जी ! आज हम समझ गए कि जो मनुष्य अपने जीवन का सही ढंग से उपयोग नहीं करता, वही अपने चारों ओर नरक का निर्माण कर लेता है !" तभी सोनिया ने कहा--"पंडित जी ! आगे कर्म लोक में क्या हुआ ? वह कथा भी तो सुनाइये ?" वहां बैठे दूसरे लोगों ने भी सोनिया की बात का समर्थन किया । अतः पं० दुर्गानारायण आगे, कहने लगे--

कर्मलोक में प्रवेश करते ही युधिष्ठिर को हजारों की संख्या में छोटे-छोटे खेत दिखाई दिए । उनमें से कुछ में गेहूं लहरा रहे थे और कुछ खेत पानी के अभाव में पान के पत्ते की तरह सूखकर मुरझा गये थे । जय ने ही बताया--"महाराज ! पहले यहां बहुत बड़े-बड़े खेत थे किन्तु इधर कुछ ही वर्षों में एक ही घर के भाइयों में बंटते-बंटते अब ये छोटे हो गये हैं । आश्चर्य नहीं, दस-पचास वर्षों में अब ये खेत इतने छोटे हो जायेंगे कि उनकी एक मेड़ पर बैठी गौरेया दूसरे मेड़ पर बैठी गौरेया की चोंच से चोंच मिला

लें। निरन्तर बटवारा होते रहने के कारण आधे से अधिक खेत अब मेड़ों के रूप में परती पड़े हुए हैं। यहां जिन

किसानों के पास पैसे और सुविधायें थीं उन्होंने अपने खेतों को सींच दिया है और बाकी के खेत इन्द्र भगवान की दया के लिए आंखें फाड़-फाड़कर आसमान की ओर देख रहे हैं। कुछ खेत तो बीज के अभाव में बिना बोए ही पड़े हुए हैं।"

जय ने ही आगे कहा—"महाराज ! इस समय जब पकी धान की सुनहली बालों की तरह लक्ष्मी को खेत-खेत में मुस्कराना चाहिए था तब इन खेतों में मिट्टी को भी जलाकर काली कर देने वाली लू चल रही है। इससे बड़ा नरक और क्या होगा ?"

"उस ओर भी देखिये महाराज ! पहाड़ों को भी अपनी अंगुलियों पर नचाने वाला मनुष्य, स्वर्ग से धरती पर गंगा को भी उतार कर ले आने में समर्थ आदमी—

आज अपनी हथेली पर माथा रखे हुए बैठा हुआ अपने दुर्भाग्य को कोस रहा है । क्या आपने इस से बड़ा नरक और कहीं देखा ?"

इस ओर कर्म लोक की लीला भी देखिये—"वह आदमी आंख बचा कर दूसरे के खेतों से अन्न की चोरी

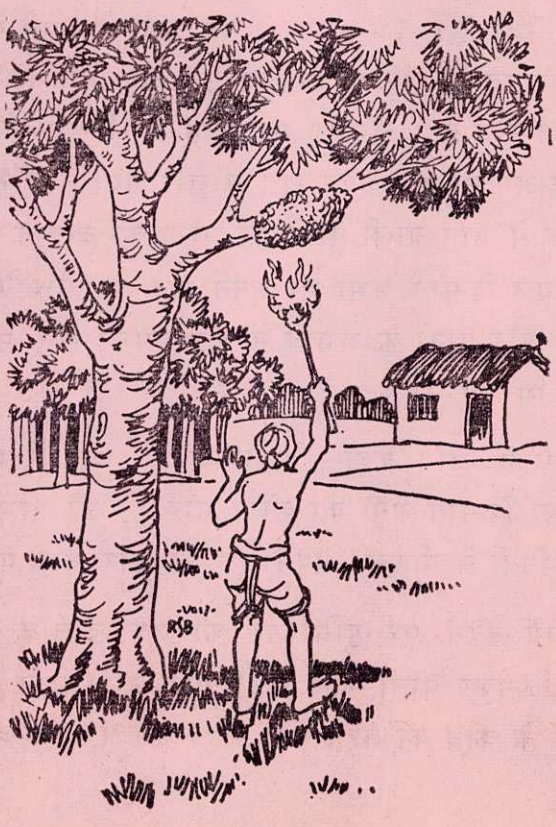

कर रहा है। वह अपने पड़ौसी की खड़ी फसल को ईर्ष्यावश नष्ट करने के लिए आग लगाने की बात सोच रहा है। उस तीसरे आदमी ने अपने पड़ौसी के खेत की मेड़ को कुदाली से तोड़ दिया है, जिससे उस खेत का पानी इसके खेत में आने लगा है। उसके खेत के सूखते हुए पौधों को जैसे अमृत मिल गया हो। उस किसान की आंखों में एक विशेष प्रकार की खुशी दिखाई दे रही है। किन्तु यह क्या? उस खेत का मालिक हाथ में लाठी लेकर आ गया है और उसने इस आदमी को पशु की तरह पीटना प्रारंभ कर दिया है। वह कह रहा है—"ले अब मैं तेरे दोनों हाथ ही तोड़कर रख दूंगा जिससे तू बार-बार मेड़ न तोड़ सके।" लाठियों की मार खाकर वह आदमी जोर-जोर से चिल्ला रहा है। इधर-उधर अनेक आदमी अपने खेतों में काम कर रहे हैं। किन्तु आश्चर्य उसे बचाने के लिए कोई नहीं दौड़ रहा है? लगभग मर जाने की स्थिति तक पीट कर वह आदमी अब अपने खेत में लौट गया है और उसने टूटी मेड़ से आने वाली पानी की धारा को बन्द कर दिया है। घायल किसान अभी भी अपने खेत के बीच में पड़ा हुआ है और पानी के अभाव में अब उसका खेत उसी के खून से सिंचता जा रहा है।

जय ने आगे कहा—"महाराज!" खेत में मूर्च्छित पड़ा हुआ किसान उसी का छोटा भाई है, जो अभी-अभी उसे लाठियों से पीटकर अपने घर की ओर चला गया है।

आगे बढ़ने पर युधिष्ठिर को एक तालाब दिखाई दिया, जिसका पानी खून से लथपथ लाठी लिए जा रहे किसान के क्रोध की तरह गंदा था। उस पर एक ही घाट

था जिस पर कुछ लोग नहा रहे थे और उन्हीं के पास गाय, भैंसे आदि पानी भी पी रही थीं। पास ही पके जामुन की तरह काले कुछ बच्चे भी खेलते हुए दिखाई दे रहे थे। ठीक तरह से उनके खाने-पीने की ओर ध्यान न दिया जाने के कारण उनके चेहरे पेड़ से अध-टूटी शाखा की तरह पीले और मुरझाये हुए थे। गंदे पानी में नहाते रहने के कारण उनके शरीर में खाज, खुजली और उनसे बहती हुई मवाद ऐसी दिखाई दे रही थी जैसे कटहल को बीच से काट दिया गया हो।

तालाब के पास ही कुछ मिट्टी के घर दिखाई दे रहे थे, जिनके चारों ओर जंगली घास, बेशरम के और गाड़र-गोटी के पौधे अंगद के पांव की तरह जमे हुए थे। घरों के पास से ही कुछ मरे हुए जानवरों की सड़ांद आ रही थी। कुछ चीलें और कौवे सड़े मांस को अपनी चोचों में दबा कर इधर-उधर फेंक रहे थे। जय ने कहा—"महाराज ! यह इस गांव के पिछड़े हुए लोगो की बस्ती है। यहां से आती हुई सड़ांद और उड़ते हुए कौवे—इस की यही पहचान है।"

इसी समय युधिष्ठिर को सामने से आता हुआ एक आदमी दिखाई दिया। वह अपने कंधे पर हंसिया रखे हुए था। एक हाथ में खुरपी और दूसरे में लाठी लिए हुए था। उसके जगह-जगह से फटे हुए कपड़े और दाख की तरह सिकुड़े हुए मुख को देखकर महाराज मोम की तरह पिघल उठे। उसे रोककर उन्होंने कहा—"बाबा ! रात दिन मेहनत करने के बाद भी तुम्हारी यह दशा ! मांग लो जो कुछ चाहते हो ?" किसान ने नमस्कार कर कहा—"महाराज ! आप की दया से मेरे पास अभी भी दो हाथ

हैं। दो पैर हैं। शरीर में काम करने लायक ताकत है। एक छोटा-सा खेत भी है। रहने के लिए एक झौपड़ी भी बना रखी है। मैं हर दिन अपनी मेहनत की रोटी खाता हूं, और मुझे क्या चाहिए ? सुना है, जो आदमी अपना कार्य अपने हाथ से नहीं करता, वह सीधे नरक जाता है। मुझे नरक में मत ढकेलिए महाराज !" उसकी बातें सुनकर युधिष्ठिर ठगे-से रह गये। एक ओर इतनी गरीबी और दूसरी ओर इतना संतोष ! जय ! बड़ा विचित्र लोक है यह ?"

सामने ही उसी किसान की तरह बूढ़ा, जर्जर एक पीपल का पेड़ दिखाई दिया। उसी के नीचे हनुमानजी का एक टूटा-फूटा मंदिर था। पीपल की डालियों को ही छूता हआ धरमचन्द्र सेठ का एक बड़ा-सा पक्का मकान था। जय ने कहा—"महाराज इस गांव में इस से बड़ा और कोई मकान नही है। इस घर से अधिक लक्ष्मी भी अन्य किसी घर में नहीं है।"

"तब तो इसे भीतर से देखना चाहिए।" युधिष्ठिर ने कहा।

"जैसी आपकी आज्ञा।" कहते हुए जय ने सूक्ष्म शरीर धारण कर उस घर में प्रवेश किया। सूक्ष्म शरीर में युधिष्ठिर भी जय के पीछे-पीछे चलने लगे। घर में घुसते ही उन्हें सबसे पहले एक बहुत बड़ी पशुशाला मिली जिसमें गोबर, कीचड़ और नाना प्रकार की गंदगी के कारण मच्छर और मक्खियों के झुंड स्वतंत्रतापूर्वक घूम रहे थे। खुले आंगन में स्नानघर था। वहीं से घर के गंदे बर्तन साफ किये जा रहे थे। आंगन से गंदा पानी निकालने के लिए शायद नाली नहीं थी। अगर थी तो वह कचड़े से पूरी

तरह भर चुकी थी। फलतः गंदा पानी आधे जंगल में फैला हुआ था। पानी में छोटे-बड़े लाखों कीड़े किलबिला रहे थे। स्नान करने की जगह से लगा हुआ ही रसोईघर था। इसमें धुआं निकलने के लिए कोई रास्ता नहीं था। गीली लकड़ी के कच्चे धुएं के कारण गृहलक्ष्मी की आंखें फूलकर टेसू के फूलों की तरह बड़ी-बड़ी हो गई थीं। रसोईघर में ही एक ओर ओढ़ने-पहिनने के कपड़े रखे हुए थे, जो धुएं

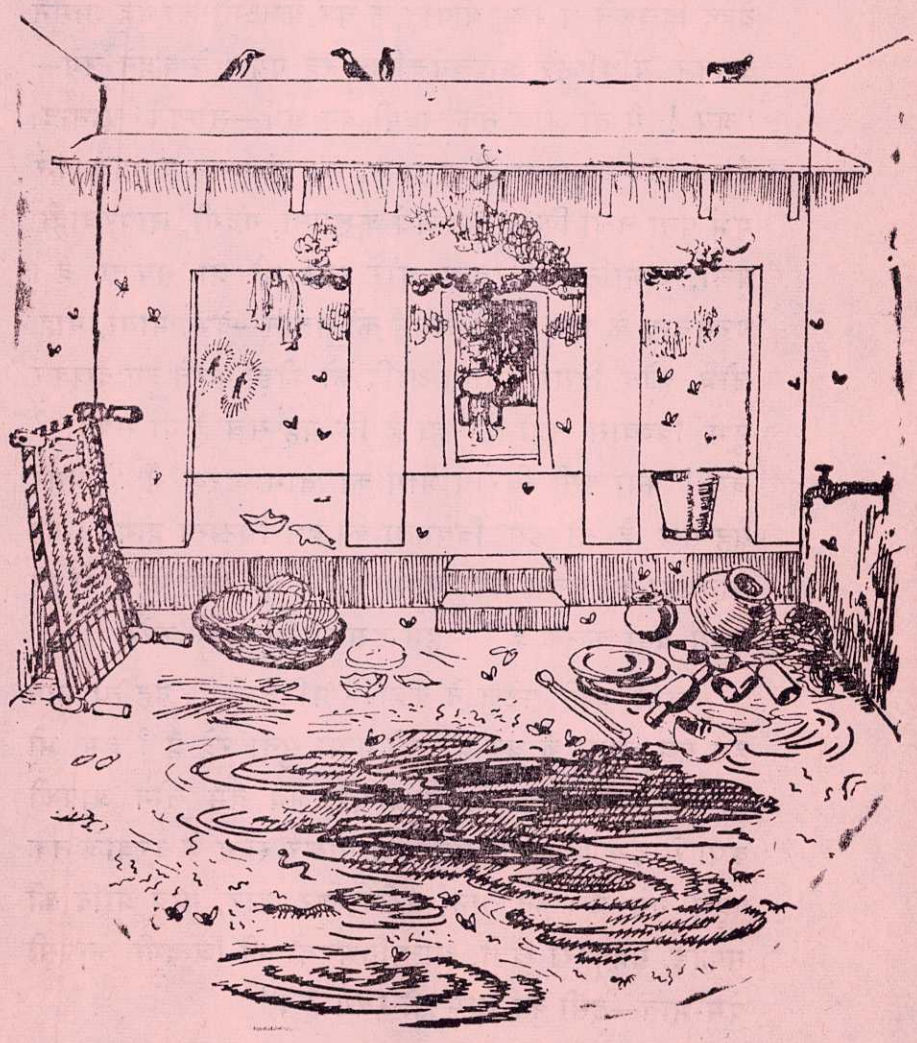

के कारण पीले-काले हो रहे थे। घर का सामान अस्त-व्यस्त रूप में इधर-उधर बिखरा हुआ था। नंगे-अधनंगे बच्चे बासी रोटियां चबा रहे थे। और जूठन को सारे घर में फूल समझकर बिखेर रहे थे। माता-पिता द्वारा वे बात-बात में डांटे-डपटे और मारे-पीटे भी जा रहे थे, जिससे उनमें हीनता की ग्रंथियां घर कर गई थीं। और वे किसी अपरिचित व्यक्ति के सामने निकलने या नाम बताने में भी बेहद हिचकते थे। लक्ष्मीपति के घर अलक्ष्मी का यह शासन देखकर युधिष्ठिर आश्चर्यचकित रह गये। वे कहने लगे—"जय ! मैं तो आज तक लक्ष्मी का अर्थ—सौन्दर्य, आनन्द, वैभव और व्यवस्था ही समझता रहा हूं। पर यहां आकर मुझे पता चला कि उसका अर्थ कुरूपता, गंदगी, लापरवाही, घृणा, अशान्ति, दरिद्रता और भय भी हो सकता है। धरमचन्द्र के घर में भी अधर्म की संतानें—दंभ, माया, मोह, लोभ, क्रोध, हिंसा, यातना आदि को क्रीड़ा करते हुए देखकर मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि यह सच है या सपना ? जय ! क्या इसी विरोधाभास का नाम नरक है ? अगर यह सच है तो इस विषमता को हमें मिटाना होगा। यह मानवता का सबसे बड़ा अपमान है। यह स्वर्ग के लोगों पर सबसे बड़ा कलंक है !" हम इसका प्रतिकार करेंगे।

तभी वंशी पटेल ने कहा—"पंडितजी ! यह तो आप हम सब लोगों के घर-घर की कथा सुना रहे हैं ? हम भी तो इसी नरक में रह रहे थे। पर अब हम लोग आपकी कृपा से इस गंदगी से छुटकारा पाकर स्वर्ग के दरवाजे तक पहुंच गये हैं। तन, मन, शरीर, घर, द्वार, गांव आदि की सफाई, सहकारी खेती, आत्मनिर्भरता की जिन्दगी, आपसी प्रेम-भाव—इसी का नाम तो स्वर्ग है।"

"फिर युधिष्ठिर महाराज ने क्या किया ? क्या वे भी नरक की गंदगी और पिछड़ापन देखकर स्वर्ग लौट गये ?" कन्हैया ने पूछा ।

"नहीं, भाई, नहीं ! वही कहानी तो मैं अब सुनाने जा रहा हूं ।" ऐसा कहते हुए पं० दुर्गानारायण ने आकाश की ओर देखा । बादलों की एक गहरी काली चादर ने सारे आसमान को अपने में बांध लिया था और कहीं भी आशा का कोई तारा चमकता हुआ दिखाई नहीं दे रहा था । अलाव अभी भी उस अन्धकार के बीच मानव के संघर्ष करने की असीमित शक्ति के रूप में धधक रहा था ।

पं० दुर्गानारायण ने आगे कथा प्रारम्भ की । फूलपुर गांव में घूमते हुए जय और युधिष्ठिर एक नीम के चबूतरे से कुछ दूर ही ठिठक गये । दोपहर के सूर्य की किरणें भाले की तरह धरती को बेध रही थीं । चबूतरे पर गांव के पंचों की पंचायत लगी हुई थी । पं० रामगुलाम शास्त्री कह रहे थे —"सदर ! अगर चार-छः दिन और पानी नहीं गिरा तो इस साल फिर हम लोग अकाल के जबड़े में पिस जायेंगे । पिछली साल तो लोगों ने पान-पत्ता चबाकर किसी तरह निकाल दिया । उन्होंने अपने खेतों को धरमचन्द्र के यहां गिरवीं रख दिया, जो कुछ घर में बेचने लायक था, उसे बेच दिया । और एक समय पसिया पीकर, इमली के पत्ते चबाकर या कंद मूल खाकर अपना बुरा समय पार कर लिया । पर अब इस वर्ष क्या होगा ? एक साल के टूटे हुए किसान को भगवान भी मुश्किल से सहारा दे पाते हैं ? चौधरी काका ने कहा—"सदर ! तुम देख ही रहे हो । कैसी भयानक गर्मी पड़ रही है और रात को भी ओस गिरती है । घाघ कवि ने ठीक ही कहा है— 'दिन में गरमी, रात में ओस ।

कहे घाघ बरसा सौ कोस।" लाल नीले बादल भी यही कह रहे हैं—"लाल पियर जब होय अकास। तब नाही बरसा की आस॥" इसीलिए अब भाग्य का भरोसा छोड़ो सदर! और कुछ ठोस कार्य करो। यदि आधे पूस में पानी बरस भी गया तो भी सब चौपट हो जायेगा—"पानी बरसे आधे पूस। आधा गेहूं, आधा भूस॥"

पंचम पटेल ने कहा—"सदर भैया! हम सब ने बड़ी आशा से आप को सरपंच चुना है। हम सब ने अपने भाग्य

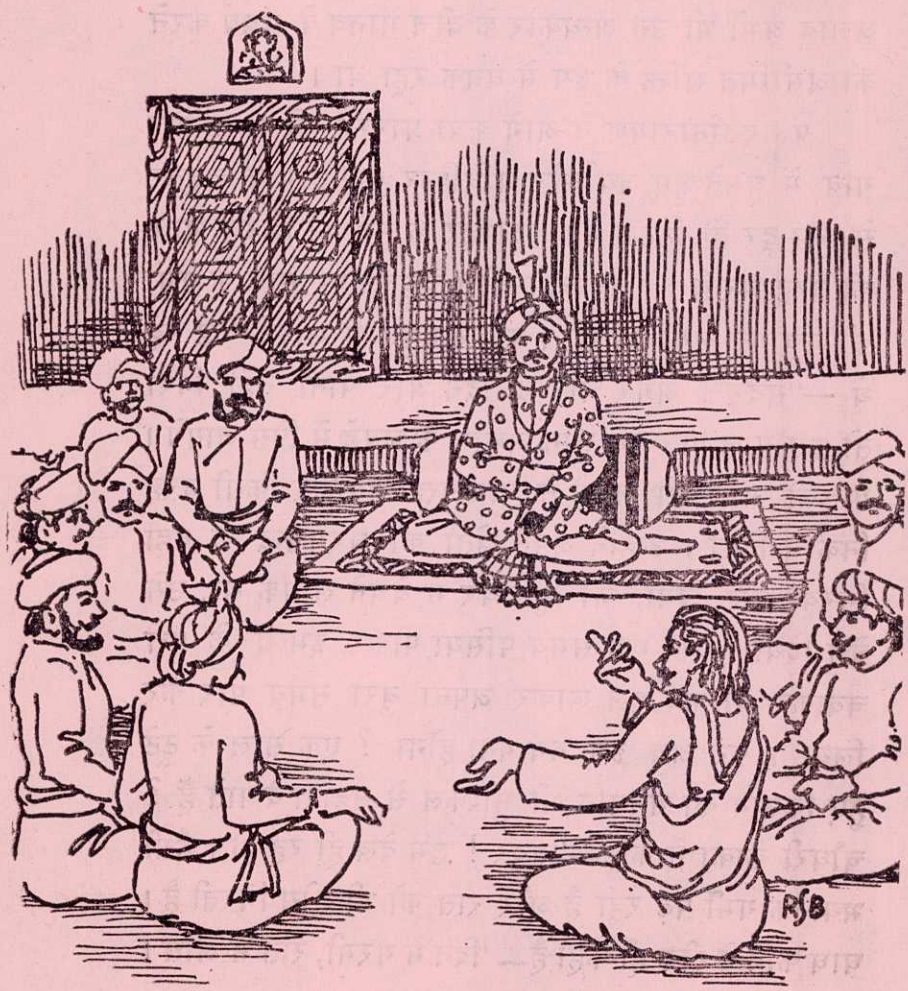

का भरोसा तो देख ही लिया भगवान का भरोसा भी पिछले साल धोखा दे गया। अब तो केवल तुम्हारा ही भरोसा है।" कुछ ऐसा करो कि यह हर वर्ष की पानी की यह झंझट ही खतम हो जाये।"

शास्त्री जी बोले—"सदर ! मैं अब अच्छी तरह समझ गया हूं कि मनुष्य से बड़ा इस संसार में और कुछ नहीं है और सबसे अच्छा मनुष्य वह है जो अपनी उन्नति के लिए सबसे अधिक परिश्रम करता है। मनुष्य ही विकास का कारण है और वही पतन का ; वही अकाल का भी कारण है और वही पानी की व्यवस्था करने का। वही गरीबी, दरिद्रता बेकारी और भेद-भावों का जनक है और वही शांति, समझौता, प्रेम और सहयोग का। आपसी फूट गाँव को नरक बना देती है और एकता स्वर्ग !"

सदर ने कहा—"शास्त्री जी ! आप लोग ठीक कह रहे हैं। अभावों का जीवन ही नरक का जीवन है। इस से ऊपर उठकर हमें स्वर्ग का निर्माण करना ही होगा पर जितनी महत्त्वपूर्ण वस्तु होती है, उसका उतना ही अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है। बोलो, आप सब तैयार हैं ?"

शास्त्री—"स्वर्ग तो मरकर ही प्राप्त करने की वस्तु है सदर ! फिर देख तो रहे हैं एक धनी से गाँव भर की गरीबी नहीं मिटती। एक शिक्षित से गांव भर की अशिक्षा दूर नहीं होती ! इसलिए अब हमें सामूहिक कदम ही उठाना पड़ेगा सदर !"

"पर शास्त्री जी ! आज हमारे पास नहरें नहीं, कुएं नहीं। तालाब नहीं। सिंचाई के अन्य कोई साधन नहीं। पैसे भी नहीं ? हथेली पर आम तो नहीं जमता !" सदर ने कहा।

तभी युधिष्ठिर ने कहा—"जय ! सुन रहे हो इनकी बातें ! ये पंडित व्यक्ति हैं। इन्हें सहारे की आवश्यकता है। इस समय इनकी सहायता करना ही मेरा सबसे बड़ा धर्म है। अब तुम जाओ। मैं जब तक इस धरती को स्वर्ग नहीं बना लूंगा तब तक शांति से नहीं बैठूंगा।" इतना कहकर ब्राह्मण के रूप में युधिष्ठिर पंचों के सामने पहुंचकर कहने लगे—"हथेली पर आम जम सकता है सदर ! जहां चाह है, वहां राह है। जहाँ साहस है, वहां साधन हैं। अभावों की जिन्दगी से आप सब ऊब चुके हैं और चाहते हैं कि स्वर्ग का प्रकाश सब लोगों को मिले तो आइए मेरे साथ।" इतना कहकर वे सदर का हाथ पकड़कर खेतों की दिशा में चल पड़े। वहां बैठे सभी पंच आश्चर्यचकित होकर उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

धूप में पानी के लिए मछली की तरह तड़पते हुए एक खेत में खड़े होकर युधिष्ठिर ने कहा—"भाइयों ! बीमार आदमी को दवा देना, दुःखी को धीरज देना, जरूरतमंद की सहायता करना, भूले हुए को राह दिखाना—ये सभी कार्य हमारे यहां धर्म कहे जाते हैं। इसी तरह प्यासे खेतों को पानी देना किसान का सबसे बड़ा धर्म है। बिना साधना के सफलता नहीं मिलती बिना त्याग के उन्नति नहीं होती। अगर आप सब तैयार हैं तो हम बताते हैं—उन खेतों की सिंचाई के लिए पानी कहाँ से मिलेगा ! हमारे पास तो इतना पानी है कि इन सब खेतों की जन्म-जन्मान्तर प्यास बुझ सकती है।"

"हम सब तैयार हैं महाराज !" सदर ने कहा।

"एक चने से भाड़ नहीं फूटता। सब पंचों को अपने हाथ में खेत की मिट्टी लेकर संकल्प करना होगा।"

युधिष्ठिर ने कहा।

"हम तैयार हैं, हम तैयार हैं, तैयार हैं हम।" कहते हुए पंचों ने खेत की मिट्टी को लेकर उसे अपने माथे से लगाया और शान्ति-पूर्वक युधिष्ठिर की ओर देखने लगे।

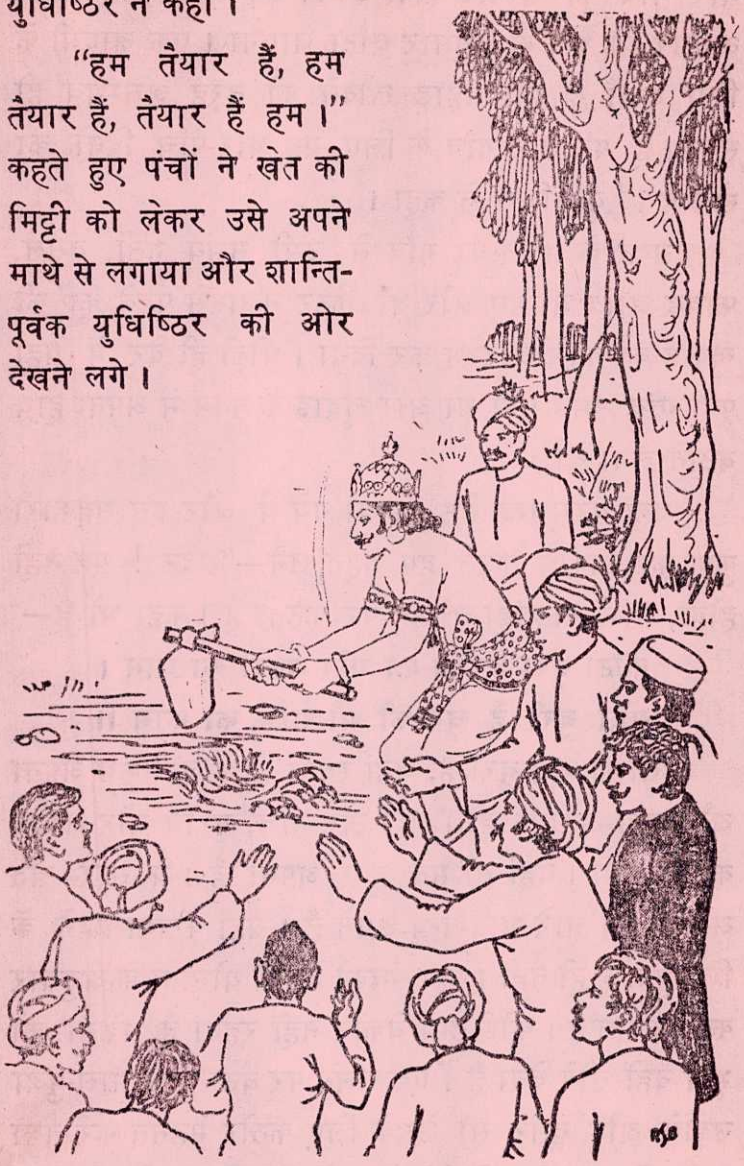

"सदर ! ठीक यहीं, जहां नये युग की पूजा के लिए लोगों ने अपने संकल्पों के फूल चढ़ाये हैं, आज और अभी एक विशाल कुआं खोदना है। यह सब भूल जाओ कि यह खेत किसका है। अब यह पूरे गाँव का है। ये सारे खेत

सारे गाँव की सम्पत्ति हैं। इनकी उपज को अब खेतों के आकार या श्रम के अनुसार बाँटा जाएगा। एक आदमी के लिए कुआँ खोदना पहाड़ खोदने की तरह असम्भव हो सकता है पर सारे गाँव के लिए यह चार-पाँच दिनों का खेल है।" युधिष्ठिर ने कहा।

सदर के संकेत पर गाँव से उसी समय गेंती, तसले, फावड़े आदि आ गए और युधिष्ठिर ने सबसे पहले कुएँ की खुदाई का काम आरम्भ कर दिया। थोड़ी ही देर में वहां पूरा गांव उमड़ पड़ा था और खुदाई के काम में अपना हाथ बंटाने लगा था।

वहां धरमचन्द्र सेठ भी आ गये थे और इस सहकारी कुएं का विरोध करते हुए कहने लगे—"सदर ! यह नहीं होगा, साझे की हांडी चौराहे पर फूटती है। कहा भी है—

कांटा बुरा करील का और बदरी का धाम।
सौत बुरी है चून की औ साझे का काम॥

'साझा वहां बुरा है, जहां स्वार्थ हो। जहां कुछ अपना और कुछ पराया हो। जहां ऊँच-नीच, गरीब और अमीर का भाव हो। यहां तो सब कुछ अपना है। ये सारे खेत अपने हैं, ये सारे भाई-बन्धु अपने हैं। यहां पराया कहने के लिए कुछ है ही नहीं। यहां सबको अपनी योग्यता के अनुसार काम करना है। कोई हाथ बेकार नहीं रहना है, किसी को भूखे नहीं सोने देना है। एक पलंग पर बैठा हुआ माल-पुआ उड़ाये और दूसरे सौ उसके लिए कठोर मेहनत करें तथा भूखे मरें, यह भी नहीं होने देना है। यह सहकारिता आपस की कलह नहीं, मानवता के इतिहास का प्रारम्भ है—"भावावेश में युधिष्ठिर ने कहा। सदर ने कहा— "सेठ जी मुश्किल यह है कि आप मानव जीवन को ही ब्याज और व्यापार

समझ रहे हैं। यह तो समाज का मूलधन है और हमें अपनी मेहनत द्वारा इसका चक्रवर्ती ब्याज चुकाना ही होगा। संदेह, शंकाओं के भूतों का पीछा छोड़ो और फावड़ा हाथ में लेकर इस यज्ञ में सम्मिलित हो जाओ। यह समाज का ऋण है जो हमें चुकाना है।" धरमचन्द्र ने कुछ नहीं कहा। पर वे वहां रुके भी नहीं। घर की ओर लौट गए।

सातवें दिन कुआं खुदकर और बनकर तैयार हो गया था। इस बीच सदर ने पानी निकालने वाले यंत्र भी प्राप्त कर लिए थे। आठवें दिन सवेरे से ही कुएं पर बड़ी भीड़ थी। एक ओर शास्त्री जी वहां उपस्थित लोगों को सत्यनारायण की कथा समझाते हुए कह रहे थे—"सत्य ही ईश्वर है, वह श्रम के, सहयोग के, प्रेम के मन्दिर में निवास करता है। ईमानदारी से अपना कार्य करना ही ईश्वर की पूजा करना है। सबको अपना समझना ही मानव का सबसे बड़ा धर्म है। जो अपनी मदद खुद करता है, भगवान भी उसी की सहायता करते हैं। एक कुटुम्ब, एक वसुधा की भावना हमारे देश की बहुत पुरानी सम्पत्ति है। जैसे लोटे में ले लेने से कुएं का जल अलग दिखाई देने लगता है पर तत्वतः है तो वह एक ही, वैसे ही हम सब अलग-अलग होते हुए भी एक ही जल-धारा के अंग हैं। आओ, हम भी अपने मानस की युगों-युगों की प्यास बुझायें।" और दूसरी ओर यंत्रों से निकल कर पानी की एक मोटी जल-धारा सचमुच युगों-युगों से प्यासे खेतों की प्यास बुझा रही थी।

इस कार्य की सफलता से प्रसन्न होकर सदर ने शासन से कुछ सहयोग लिया और पन्द्रह दिनों के भीतर ही पांच अन्य कुओं की खुदाई आरम्भ करवा दी। थोड़े ही दिनों में

इनसे भी सिंचाई का कार्य आरम्भ हो गया और गांव के मुरझाये हुए खेत जैसे संजीवनी पाकर प्रनन्नता से झूम उठे जिन्हें किसान देखते तो उनके मन पीपल के पत्तों से डोल उठते और किसान बालायें देखतीं तो उनके चेहरों पर गुलमुहर के फूल खिल उठते ।

जल्दी ही सदर ने अपने सभी गांवों के पंचों और सारे किसानों को बुलाया और उनसे कहा—"भाइयों ! आपसी भेद-भाव और असहयोग की भावनाओं का दुष्परिणाम हम सबने आलस्य, भाग्यवाद, बटवारा, गरीबी और दरिद्रता के रूप में भोग लिया है । अब सहयोग का चमत्कार भी हम सब अपनी आंखों से देख रहे हैं । इस सम्बन्ध में समझाने के लिए कुछ भी नहीं रह गया है । पर कल ही युधिष्ठिर महाराज कह रहे थे कि खेतों की खड़ी हुई मेंढ़ें अभी भी हमारे हृदयों में अन्तर बनाये हुए हैं । अगर आप सहमत हों तो पहले इन्हें तोड़ डाला जाए ।" सबकी सहमति से खेतों की मेंढ़ें तोड़ डाली गईं जिससे वहां के किसानों को खेती के लिए और अधिक जमीन प्राप्त हो गई ।

सदर ने एक दिन युधिष्ठिर से कहा—"महाराज ! हमारे भाई-बहिन रात-दिन जी तोड़ मेहनत करते हैं । उनके चेहरों पर संतोष का सुख है । भविष्य की चिन्ता से भी वे मुक्त हैं । पर पता नहीं उनका शरीर दिनों-दिन टूटता क्यों जा रहा है ?"

युधिष्ठिर ने कहा—"इसका कारण है पौष्टिक भोजन का अभाव, भोजन में हरी शाक-सब्जियों की कमी और खाने-पीने की आदतों में सुधार की आवश्यकता ।"

युधिष्ठिर के संकेत पर सदर ने सभी कुओं के चारों ओर बगीचे लगवा दिये और इस तरह उन्होंने प्रतिदिन, प्रति

परिवार की आवश्यकता अनुसार हरी सब्जियां भी उपलब्ध कराने की व्यवस्था कर दी। उन्होंने अपने गांव में एक परिवार-कल्याण विभाग भी खोला और उसके द्वारा प्रति-दिन बच्चों, वृद्धों तथा बीमार व्यक्तियों को दूध और दलिये का वितरण कार्य भी आरम्भ करवा दिया। इस काम के लिए उन्होंने एक सहकारी कोष की स्थापना भी कर ली थी। सदर ने पंचों की सलाह से मजदूर तथा किसानों के श्रम के घण्टे भी निश्चित कर दिये तथा महिलाओं और पुरुषों को दी जाने वाली मजदूरी भी एक समान कर दी। मजदूरी में अच्छे किस्म का अनाज, कपड़ा तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुयें भी दी जाने लगीं। इस हेतु उन्होंने एक सहकारी भण्डार की स्थापना भी कर दी थी।

एक दिन बातों ही बातों में युधिष्ठिर ने शास्त्री जी से कहा—"आप तो विद्वान हैं शास्त्री जी ! पर आपके ज्ञान का प्रकाश, उसकी शक्ति इस गांव के दूसरे लोगों को नहीं मिल पा रही है ?"

"महाराज ! बैठे-बैठे मेरा भी जी ऊबता रहता है। खेतों, खलिहानों में काम कभी किया नहीं। हो भी नहीं सकता। पर आप आज्ञा दें तो गांव के बच्चों की पढ़ाई की व्यवस्था" शास्त्री जी ने कहा।

युधिष्ठिर उनकी बात समझ गये। अतः बीच में ही उन्हें रोक कर कहने लगे—"शास्त्री जी ! गांव के सारे बच्चे आप ही के बच्चे हैं। पर इन बच्चों को क्या-क्या पढ़ायेंगे आप—ज्योतिष, व्याकरण, वेद, वेदांग, उपनिषद्···?

"न महाराज ! हम अपने बच्चों के सिरों पर पुस्तकों का बोझ नहीं लादना चाहते। हम तो उन्हें कुछ ऐसा ज्ञान देना चाहते हैं जिससे वे कोरे पंडित न बनें वरन् तन, मन,

बुद्धि और चरित्र की दृष्टि से एक पूरे इंसान बन सकें। मेरी इच्छा है कि हमारे बच्चे खेतों, खलिहानों, गलियों और बाजारों में भी काम करें। वे हमारे सहकारी भंडार चलायें और लघु उद्योग धंधों में भी काम करें। वे पढ़ाई भी करें और कमाई भी करें। कार्य करने में दक्षता ही उनकी परीक्षा की कसौटी मानी जाए। हमारे ये विद्यार्थी अभी नीम, इमली और पीपल के पेड़ों के नीचे बैठकर पढ़ें और अपने विद्यालयों की नींव भी अपने हाथों से रखें।"

"ठीक ही सोच रहे हैं आप शास्त्री जी !" बच्चे देश की सबसे बड़ी धरोहर हैं। ये कल के सुखी समाज के कोमल सपने हैं। इनकी उपेक्षा करके हम नये समाज का निर्माण कर ही नहीं सकते।" युधिष्ठिर ने कहा।

"महाराज ! संस्कृत में एक श्लोक है जिसका अर्थ है कि विद्या वह है जो मनुष्य को मुक्ति प्रदान करे। मुक्ति अर्थात् गरीबी, दरिद्रता और पिछड़ेपन से मुक्ति। ये सब अज्ञान के ही दूसरे नाम हैं। अज्ञान ही नरक है और ज्ञान का प्रकाश स्वर्ग है।" शास्त्री ने कहा।

"इस प्रकाश को आप केवल बच्चों तक ही सीमित रखना चाहते हैं ?"

"नहीं महाराज ! हमारी मातायें, बहिनें और भाई भी नया ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को स्वर्ग बनाने के इच्छुक हैं। निरक्षरता देश का सबसे बड़ा अभिशाप है। गांवों की उन्नति में यह सबसे बड़ी बाधा है। हमें इसे भी दूर करना है।" शास्त्री जी ने कहा। और उसी दिन शाम से उन्होंने अपने घर के बरामदे में लालटेनें जलाकर प्रौढ़ शिक्षा का कार्य आरम्भ कर दिया। उस समय वहां गांव के सारे पंच, माताएँ, बहिनें तथा किसान मजदूर उपस्थित थे।

शास्त्री जी ने उन सबसे कहा—भाइयों और बहिनों !

प्रौढ़ शिक्षा को गलत मत समझ लेना। वह अक्षर ज्ञान करना, १०० तक गिनती सीखना, जोड़ना-घटाना या अपने हस्ताक्षर कर लेने तक ही सीमित नहीं है। उसका अर्थ है—जीवन को नये ढंग से जीना प्रारम्भ करना। उसका मतलब है ऐसी व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करना जिस से हम सब आत्मनिर्भर बन सकें। सम्मानपूर्वक जीवन जी सकें। अपनी उन्नति के मार्ग खुद खोज सकें। स्वस्थ और सुखी रह सकें तथा अच्छे तौर तरीकों को जान सकें। जो पिछड़े, पीड़ित और दलित वर्ग के लोग हैं, उन्हें जीवन की आवश्यक सुविधायें दे सकें। प्रौढ़ शिक्षा का मतलब ऐसे ज्ञान से है जिसका प्रयोग करने के लिए हमें लगभग कुछ भी खर्च नहीं करना है। पर जिसके अभाव में हम सबका जीवन नरक की तरह पीड़ामय बना रह जाता है।

शास्त्री जी आगे कहने लगे—"लो ! मैं आज कुछ ऐसी ही सरल बातें बता रहा हूं, जिनका सम्बन्ध हम सब से है। पर जिनका महत्त्व हम में से बहुत कम लोग जानते हैं। स्वस्थ सुखी और सदा प्रसन्न रहने का एक ही सिद्धान्त

है—चलते, बैठते या पढ़ते समय अपनी कमर सीधी रखो। इससे हमारा आत्मविश्वास बढ़ता है। जीवन में नयी शक्ति का संचार होता है। थकावट, निराशा और बीमारी दूर भागती है और सदा ताजगी बनी रहती है। अब बताओ, कमर सीधी करके चलने, या बैठने में हमारा क्या खर्च होता है ?

शास्त्री जी की ये बातें सुनकर अनेक लोग अपनी-अपनी कमर सीधी करके बैठ गए। स्वयं शास्त्री जी ने अपनी पालथी बदली और वे आगे कहने लगे—"कल ही महाराज युधिष्ठिर से चर्चा हो रही थी। वे बता रहे थे कि हमारे स्वास्थ्य के दुश्मन वे करोड़ों रोगाणु हैं जो हमारे शरीर में बासे या झूठे भोजन, गंदे कपड़ों, असुरक्षित पानी आदि के माध्यम से हर समय पहुंचते रहते हैं। हमारी जीवनी शक्ति जब तक उनसे लोहा ले पाती है, लेती है। अन्त में वह जवाब दे देती है और हम खटिया पकड़ लेते हैं। घरेलू मक्खियां बीमारी फैलाने वाली जासूस हैं। हम इनकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देते। किन्तु ये गंदी से गंदी वस्तु पर बैठती हैं। और वहां से लाखों की संख्या में रोगाणु अपने पंखों, पैरों और मुंह के माध्यम से लाकर हमारे भोजन पर छोड़ देती हैं। इसी तरह हमारे आंगन या घर के आसपास इकट्ठे गंदे पानी में लाखों की संख्या में मच्छरों का परिवार जन्म लेता और बढ़ता रहता है। ये हमें रात-दिन काटते रहते हैं और ज्वर ग्रस्त कर देते हैं। पशु-धन को भी ये काट-काटकर उनका स्वास्थ्य चौपट कर देते हैं। इनसे बचने का सरल उपाय यह है कि घर के आसपास कहीं गंदा पानी इकट्ठा होने ही न दें। अगर हो तो उस पर थोड़ा-सा मिट्टी का तेल डाल दें। उसकी एक पतली-सी पर्त पानी के

ऊपर फैल जाएगी। इस के कारण मच्छरों के बच्चों को शुद्ध हवा नहीं मिल पाती और वे अपने आप मर जाते हैं।

हमारी मां-बहिनों की आदत है कि वे अपने घरों में कहीं भी कूड़े का ढेर लगा देती हैं। अथवा घर के बाहर कहीं भी उसे फेंककर अपने घर की सफाई पर सन्तोष कर लेती हैं। किन्तु इस प्रकार का इकट्ठा किया हुआ कचड़ा भी अनेक प्रकार की बीमारियों का घर होता है। वहां के लाखों रोगाणु हवा, पैरों अथवा अन्य साधनों से पुनः हमारे घरों में आ जाते हैं। इसीलिए अच्छा यह होता है कि कूड़ा फेंकने का एक निश्चित स्थान हो और उसे भी खुला न छोड़ा जाये बल्कि किसी वस्तु से ढक कर रखा जाए। या घर से कुछ दूरी पर किसी गड्ढे में कचरा फेंका जाए।

उस दिन शास्त्री जी अपनी मस्ती में थे। लोगों को भी ये नयी-नयी बातें अच्छी लग रही थीं। अतः वे उत्साह-पूर्वक उनकी बातें सुन रहे थे। शास्त्री जी कहने लगे—"भाइयो, हम सब प्रतिदिन खुले स्थानों में शौच जाते हैं। वह शौच वहीं पड़ा-पड़ा सड़ता रहता है। उस में उत्पन्न लाखों की संख्या में रोगाणु हवा, मक्खी, मच्छर आदि के माध्यम से हमारे घरों और शरीरों में बराबर प्रवेश करते रहते हैं। इन से बचने का सरल तरीका यह है कि शौच करने के बाद उस पर मिट्टी डाल दी जाए। हम चाहें तो अपने शौच के लिए एकान्त में एक बड़ा-सा गड्ढा खोद सकते हैं और शौच करने के बाद उस पर थोड़ी-सी मिट्टी डाल सकते हैं। ऐसा एक ही गड्ढा कई दिनों तक शौच के काम में आ सकता है। उसके भरने के बाद उसी के पास दूसरा गड्ढा तैयार किया जा सकता है। थोड़े दिनों के बाद इन गड्ढों में खेती के लायक बहुत अच्छे किस्म का खाद

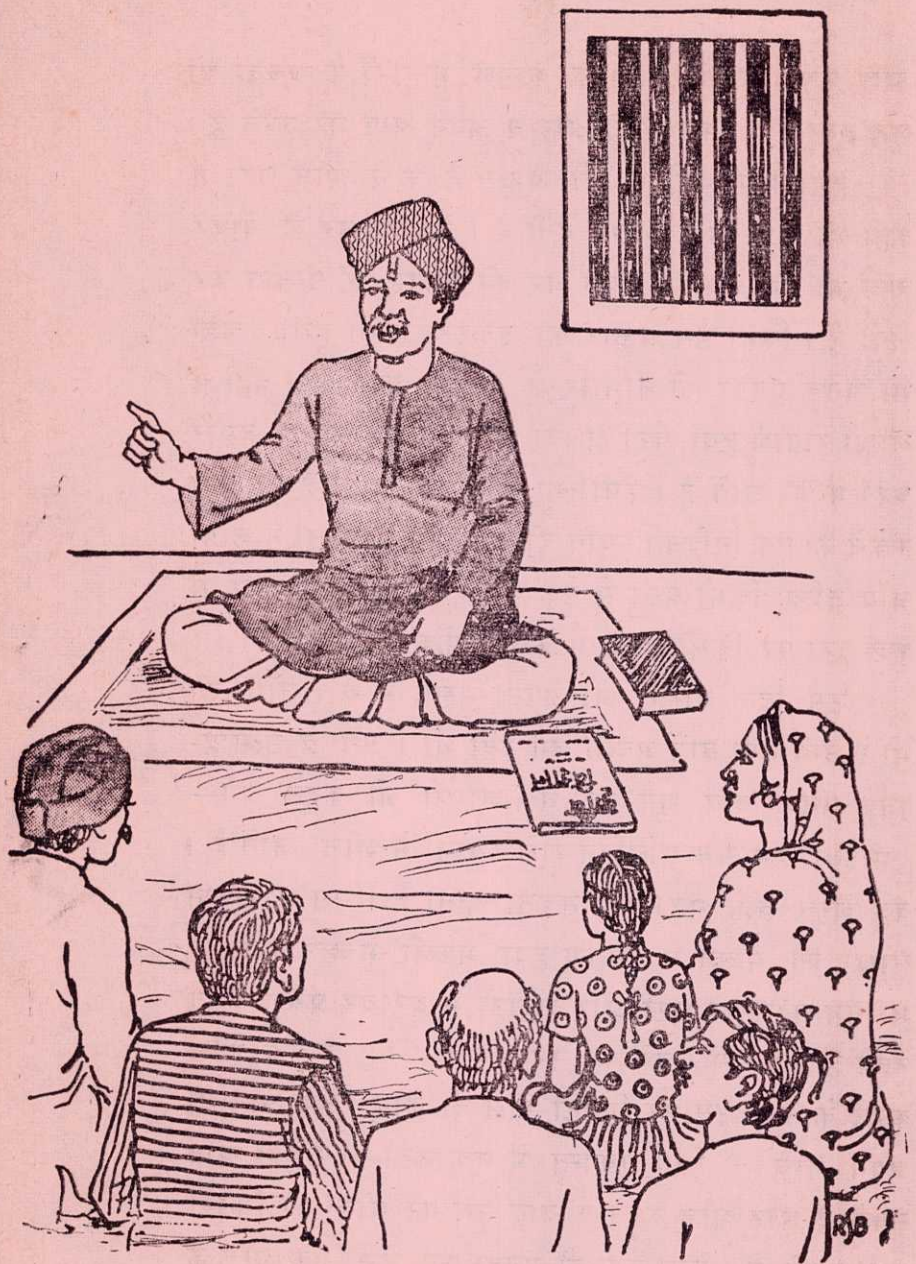

भी तैयार हो जाएगा और हम सब खुली शौच-क्रिया के दुष्परिणामों से भी सरलतापूर्वक बच जाएंगे । सदर ने कहा—"इसे कहते हैं, हर्र लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाए।" भाइयों इन सरल उपायों से तो हम अनेक बीमारियों

से बच सकते हैं और सदा स्वस्थ रह सकते हैं।

तभी चौधरी काका ने कहा—स्वस्थ रहने के लिए अपने देहातों में कई कहावतें भी प्रचलित हैं।

"सुनाओ न काका जी !" वहां बैठे सभी लोगों ने आग्रह किया। तब काका कहने लगे—"भाई ! मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं। जो कुछ पुराने लोगों से सुना है, उसे ही सुना रहा हूँ—

रहे निरोगी जो कम खाये।
बिगरे बात न जो गम खाये॥

या

प्रातःकाल खटिया से उठ कर पिये तुरन्त पानी।
ता घर वैद्य कभी न जाये, बात घाघ की जानी॥

या

सावन बियारी [रात्री का भोजन] जब तब कीजे,
भादों में पर नाम न लीजे।
क्वांर करेला कातिक दही।
मरे नहीं तो पड़े [बीमार] सही॥

चौधरी काका के इन दोहों से वातावरण में सरसता आगई। लोग वाह-वाह कह उठे। तभी रामकली बाई ने उठ कर कहा—सदर भैया ! आप लोगों के कारण अब गांव में कोई बेकार नहीं है। भूखा भी नहीं है। पर खाज-खुजली और नारू रोग के कारण अभी भी बहुत लोग पीड़ित हैं। इसकी भी कुछ व्यवस्था कीजिए।"

"बहिन ! महाराज युधिष्ठिर के निर्देशानुसार हम पहले ही अपने गांव में प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र खोल चुके हैं। वहां दो-तीन अच्छे वैद्यों की व्यवस्था है। कुछ गांव की थोड़ी पढ़ी-लिखी बहिनें भी कार्य करती हैं। पर लगता है

कि अभी भी वहां गांव के बहुत सारे लोग पहुंच नहीं पाते। तब हम कल से ही घर-घर उपचार की व्यवस्था करेंगे ताकि भाइयों, बहिनों, बच्चों और बूढ़ों को सरलतापूर्वक दवाई उपलब्ध कराई जा सके और गांव में रोग जड़ से ही समाप्त हो जायें। हम ने सुना है कि हरिजन बस्ती के एक बच्चे के फोड़े को ठीक करने के लिए वहीं के एक बूढ़े दादा ने उसके पैर में लोहे का एक सूजा गरम करके तीन-चार स्थानों पर लगा दिया है, जिस से उस बच्चे की तकलीफ बहुत ज्यादा बढ़ गई है और अब वह प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र में भरती है। तुम सब ने भी सुना होगा, कल ही श्यामा का कान दर्द कर रहा था सो उन्हीं बूढ़े काका ने उसके कान में खूब गरम तेल डलवा दिया जिससे वह लड़की दर्द से चीख उठी। उसका कान फूटते-फूटते बचा। भाई ! मेरी बात मानो, ऐसे नीम हकीमों से बचो और जब तक जानकारी न हो अपना इलाज भी खुद मत करो। रोगों के साथ लापरवाही करना या न जानते हुए, कुछ की कुछ दवा ले लेना—ये दोनों ही कार्य खतरनाक हैं। आंख, कान, नाक, गला, रीढ़ की हड्डी आदि के दर्द को तो किसी अनाड़ी आदमी को छूने भी नहीं देना चाहिए। उनकी जरा-सी असावधानी का दुष्फल हमें सारे जीवन भुगतना पड़ सकता है।"

पं० शास्त्री ने कहा—सदर ! बहिन नारू रोग के विषय में पूछ रही थीं ? जानते हो, यह रोग क्यों होता है और गांवों में ही सबसे ज्यादा क्यों होता है ?

"नहीं, बताइये न विस्तार से। हम सब लोग सुनना चाहते हैं और ऐसी बीमारियों को जड़ से नष्ट करने के लिए कड़े कदम भी उठाना चाहते हैं।" सदर ने कहा।

शास्त्री जी कहने लगे—"इस विषय से सम्बन्धित मैंने कई ग्रंथ पढ़े हैं। जानकार लोगों से चर्चा भी की है। महाराज युधिष्ठिर भी कुछ दिन पहले यही बता रहे थे कि यह रोग गंदे पानी में स्नान करने तथा असुरक्षित जल को पीने से होता है। हैज़ा, अतिसार, जठर, आन्तशोध, पाण्डु-रोग, फीलपांव आदि अन्य भयानक बीमारियां भी दूषित जल के प्रयोग से ही फैलती हैं। नारू रोग का एक छोटा-सा कीड़ा होता है जो गंदे पानी में रहता है। मानव शरीर में प्रवेश करके यह वहां बढ़ता रहता है और फिर शरीर की चमड़ी को फाड़कर बाहर निकलता है। लोग इसे भी सफेद धागा समझकर हाथ से खींच देते हैं जिससे यह टूटकर मर जाता है और फिर पीड़ित व्यक्ति को और भी अधिक तकलीफ देता है। उसके अंगों को सड़ा-गला देता है। पानी और शरीर की गंदगी से ही दाद-खाज आदि चर्म रोग होते हैं। इन से बचने के लिए शरीर की सफाई और सुरक्षित पानी का प्रयोग बहुत आवश्यक है।

"यह सुरक्षित जल क्या होता है शास्त्री जी ?" चौधरी काका ने प्रश्न किया।

"कुओं, तालाबों, नदियों, नालों आदि का पानी गंदी धूल, कचड़ा, वृक्षों के पत्तों, पशुओं के प्रयोग, गंदे कपड़े धोने आदि से दूषित हो जाता है। वह ऊपर से साफ दिखाई देते हुए भी पीने लायक नहीं रहता। अतः यदि खुले स्थानों का पानी पीना ही पड़े तो उसे छानकर एवं उबालकर पीना चाहिए। कुओं के पानी में समय-समय पर लाल दवाई डालते रहना चाहिए और उसके पास गंदा पानी एकत्र न होने देना चाहिए। कुएं के मनघटे पर न तो नहाना चाहिए और न वहां पर कपड़े ही धोने चाहिएं। ऐसा करने से

दूषित पानी फिर कुएँ में चला जाता है और वह सारे पानी को गंदा बना देता है। वस्तुतः हमें पानी पीने के कुओं का मुंह अच्छी तरह ढककर रखना चाहिए ताकि उस में धूल, कचड़ा आदि न पहुंचने पाये और फिर ऐसे कुओं में पानी निकालने के यंत्र लगा देने चाहिए जिससे पानी बाहर निकाला जाये। यही पानी सुरक्षित पानी कहा जाता है। इसके प्रयोग से किसी भी प्रकार की बीमारी फैलने का भय नहीं होता।"

"आपके द्वारा दी गई इस महत्त्वपूर्ण जानकारी के लिए धन्यवाद शास्त्री जी ! पर आपने यह बात हम लोगों को आज तक क्यों नहीं बताई ! अपने स्वास्थ्य और सुख के लिए ही तो हम सब कुछ करते हैं। कल से ही गांव में सुरक्षित जल की व्यवस्था भी हम प्रारम्भ करेंगे और दवा डालकर कुओं के पानी को शुद्ध भी कर डालेंगे। तालाब, नाले, आदि के पानी पर हम लोग प्रतिबन्ध लगा देंगे कि कोई उसका प्रयोग न करे। मैं तो सोचता हूं, ऐसा पानी हमारे पशुओं को भी नुकसान करता होगा ?" सदर ने कहा।

"निश्चित रूप से सदर भैया ! मूक पशु भले ही कुछ न कहें पर हमें तो उनके स्वास्थ्य पर ध्यान रखना ही होगा। उनके स्वास्थ्य से हमारा स्वास्थ्य जुड़ा हुआ है। बीमार गाय-भैंस का दूध हमें भी बीमार कर देता है और बीमार बैल को हम कितने दिन जोत सकेंगे ?" शास्त्री जी ने कहा।

"आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं पंडित जी ! हम कल से अपने पशुओं को भी गंदे पानी के निकट नहीं जाने देंगे।" चौधरी काका ने कहा।

रात आधी से अधिक बीत गई थी। अतः उस दिन की

यह बैठक समाप्त कर दी गई। सदर ने सब लोगों से अपने अपने घर जाने को कहा तो लोग कहने लगे—"अगर ऐसी ही ज्ञान की बातें होती रहें तो हम अपने घर कभी न जायें।" "अब तो यह सत्संग रोज ही होना है।" कहते हुए सदर, शास्त्री आदि उठकर खड़े हो गए। अतः वहां बैठे हुए लोगों को विवश होकर उठना पड़ा।

सांस लेने के लिए थोड़ी देर पं० दुर्गानारायण रुके तो वंशी पटेल ने कहा—"ठीक ही कह रहे थे फूलपुर के आदमी अगर ऐसी ज्ञान की बातें हों तो हम अपने घर कभी न जाएं। कन्हैया ने कहा—पंडित जी ! वहां के लोग तो चले भी गये, पर हम तो यह पूरी कहानी ही सुनकर जायेंगे। ऐसी कहानियां कहां रोज-रोज सुनने को मिलती हैं।"

"अरे भाई! मैं सुना रहा हूं! पूरी कहानी ही सुनाऊंगा। पर जरा दम तो लेने दो। पं० दुर्गानारायण ने कहा। गला साफ कर, पानी पीकर उन्होंने कथा को आगे बढ़ाया।

खेतों से लौटते समय तालाब के निकट खड़े होकर एक दिन युधिष्ठिर ने कहा—"सदर ! यह गंदी बस्ती हमारे गांव का सब से बड़ा कलंक है। हमारे उपेक्षित और पिछड़े भाइयों को भी खुली हवा तथा प्रकाशदार मकान मिलने ही चाहिए। अगर इस नयी और आदर्श बस्ती की नींव हम लोग इस विशाल खुले मैदान में डालें तो कैसा रहे ?"

"महाराज ! यह गांव के निस्तार की ही जमीन है। और यहां सरलतापूर्वक नया गांव बसाया जा सकता है। यहां तो इतनी जगह है कि आगे पीछे यहां पूरा का पूरा गांव ही नये ढंग से बस सकता है। सदर ने कहा—यहां चौड़ी-चौड़ी सड़कें बनाने में भी कम मेहनत लगेगी ; जमीन का स्तर भी कुछ ऊंचा है और कंकरीली मिट्टी है। यहां वर्षा ऋतु

में पानी का भराव भी नहीं होगा।" सदर ने कहा और दूसरे दिन से ही उन्होंने सबके सहयोग से नये फूलपुर की नींव डाल दी। एक समान नीति के आधार पर उन्होंने हर परिवार के लिए तीन कमरों तथा आगे पीछे बरामदों की व्यवस्था की। आंगन फुलवाड़ी और शाक सब्जी लगाने के लिए भी हर घर के साथ पर्याप्त स्थान छोड़ा गया। गंदा पानी निकालने के लिए पक्की नालियां बनवाने की व्यवस्था

की गई। इस कार्य में उन्होंने पुराने घरों को गिराकर कुछ सामग्री वहां से ली। कुछ सहयोग शासन से लिया और गांव के हर बच्चे से लेकर बूढ़े ने कठोर श्रम शुरू कर दिया। थोड़े ही दिनों में घरों के आसपास एवं सड़क के दोनों ओर लगाए गए पेड़ भी प्रसन्नता से झूम उठे।

"हरिजनों के लिए इतने सुन्दर मकान ! लो आ गया कलियुग नहीं, इस गांव में इतना अन्याय हम नहीं होने देंगे।" धरमचन्द्र यहां वहां कहने लगा। और एक दिन तो वह नये फूलपुर की सड़क पर खड़ा भी हो गया। सदर ने उसे समझाया—"सेठ जी ! अब नयी हवा चल रही है और अपने पुरखों ने कहा है—**जैसी बहे बयार, पीठ पुनि तैसी कीजै।**" अपना रुख और व्यवहार बदलो। आदमी-आदमी के बीच कोई अन्तर नहीं होता। सब को समान अधिकार हैं। सब स्वतंत्र हैं। युगों-युगों से हम सबने पिछड़ी जातियों का शोषण करके उनके जीवन को नरक जैसा बना दिया है। अब स्वर्ग समान बनाने का काम भी हमारा ही है। जन्म से मनुष्य अछूत नहीं होता, अपने कर्मों से होता है। आज अछूत वह है जो सामाजिक कार्यों में बाधा डाले…?

"तुम मुझे अछूत कह रहे हो सदर ! इसका परिणाम अच्छा न होगा।" सेठ ने कहा। इस पर चौधरी चाचा को क्रोध आ गया। वे कहने लगे—**"कोयला होय न ऊजला सौ मन साबुन धोय।"** सदर ! ऐसे धरमचन्द्र का हम क्या करेंगे जो लोक और धर्म के कार्यों में बाधा डाले। हम इसका सामाजिक बहिष्कार करेंगे। आज से इसके घर काम करने के लिए इस गांव की कोई भी बहिन और भाई नहीं जायेगा।"

पहले धरमचन्द्र समझे कि यह कोरी धमकी है। पर

जब दूसरे दिन सचमुच उनके यहां कोई काम वाला न पहुंचा तो समस्याएं खड़ी हो गईं। उनकी पशु-शाला में गाय, बैल ज्यों के त्यों बंधे रहे। उन्हें छोड़कर चराने ले जाने वाला, पानी पिलाने वाला और बांधने वाला कोई न था। घर में मेहरी के अभाव में मुंह धोने और नहाने तक के लिए पानी नहीं था। घर की सेठानी कभी घर के बाहर तक नहीं निकली थीं—पानी कौन भरे ? एक दिन का काम तो किसी तरह चल गया। पर दूसरे दिन ये समस्याएं और अधिक जटिल हो गईं। पशुशाला और शौचालय की सफाई न होने के कारण तीसरे दिन तो वहां खड़ा होना कठिन हो गया। और चौथे दिन धरमचन्द्र का सारा घर रौरव नरक बन गया। उन्होंने साम, दाम, दण्ड, भेद—सभी का प्रयोग करके अपने काम वाले आदमियों को डराया, धमकाया, प्यार भी किया पर कोई परिणाम न निकला। पांचवे दिन सवेरे ही वे महाराजा युधिष्ठिर के पास पहुंचे और उनके चरण स्पर्श कर कहने लगे—"महाराज ! मैं अब अच्छी तरह समझ गया हूं कि मेरा सारा वैभव इन मजदूरों के श्रम के ऊपर ही टिका हुआ है। जिन्हें हम आदमी नही समझते, वे ही हमें आदमी बनाए हुए हैं ! सचमुच वे महान् हैं, सहनशील हैं और हम उनके समक्ष बहुत ही तुच्छ और नरक के कीड़े हैं। उनके विकास में ही हम सब का विकास निहित है। जहां सुमति है, वहीं सम्पत्ति है। मुझे क्षमा कीजिये। मेरी सारी सम्पत्ति अब अपनी ही समझिये और इसे सम्भालिए। मेरे कई मकान खाली पड़े हुए हैं। उन में आप आज से ही 'ग्राम सचिवालय', 'पाठशाला', 'स्वास्थ्य केन्द्र', या जो चाहे खोलिये और मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये।"

"सेठ जी ! आप धन्य हैं। आज आपके अन्तःकरण में युग-देवता की प्रतिष्ठा हुई है। सदर, शास्त्री और चौधरी बहुत पहले ही अपनी सारी सम्पत्ति गांव को दान दे चुके हैं। चर्तुमुखी विकास का चौथा कोना अधूरा था, आज वह भी पूरा हो गया। सदर ! सेठ जी का स्वागत करो।" और सदर ने उन्हें अपने कण्ठ से लगा लिया।

थोड़ी देर बाद गांव के नव-निर्माण सम्बन्धी कार्यों की चर्चा करते हुए सदर ने कहा—

"सेठ जी ! युधिष्ठिर महाराज कह रहे थे कि अब यहां एक सम्मिलित पशुशाला होनी चाहिये, जिसमें गांव के सारे पशु एक ही स्थान पर बंध सकें और उनकी सही ढंग से देख-रेख हो सके। पशुशाला की गंदगी और दुर्गंध से भी लोग दूर रह सकें। अभी हर किसान का एक-न-एक बच्चा गाय-बैलों की देख-रेख में लगा हुआ है; जिस समय कि उसे पाठशाला में होना चाहिये था, उस समय वह जंगल में भैंसों के पीछे घूमता है। अगर यह कार्य सहकारी रूप में हो तो हमारे दस-बारह भाई ही गांव के सारे पशुओं की देख-रेख कर लेंगे; और इस तरह हमें बहुत सारे हाथ खेती और अन्य कार्यों के लिए मिल जाएंगे। बच्चों को पढ़ने का समय भी मिल जाएगा।"

"यह कार्य मुझ पर छोड़ दीजिए सदर !" सेठ जी ने कहा। और उसी दिन से उन्होंने एक विशाल और आदर्श गौशाला का निर्माण-कार्य प्रारम्भ करा दिया। उन्होंने गौशाला के पास ही दो-तीन गोबर-गैस संयंत्र भी लगवा दिये और नई बस्ती में भोजन पकाने के लिये गैस भी उपलब्ध करा दी। उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से गोबर का खाद बनाने के लिए गड्ढे भी खुदवा दिये क्योंकि चौधरी काका उनसे हमेशा कहा करते थे—**"खाद देय तो होवे खेती, नहीं**

तो रहे नदी की रेती।"

सेठ जी ने तालाब को भी गहरा कराया और उससे नलों द्वारा पानी निकाल कर पशुओं और आदमियों के लिए अलग-अलग घाट बनवा दिये। पक्की नालियां बनवा कर गंदे पानी को सिंचाई के लिए भी उपलब्ध करा दिया। तालाब के पास एक बगीचा भी लगवा दिया तथा गांव के आसपास खाली स्थान में अच्छी किस्म के हजारों की संख्या में आम के पौधे लगवा दिये। सहकारी बगीचे में उन्होंने केले, पपीते, नीबू और मौसमी शाक-सब्जियों की खेती आरम्भ की।

युधिष्ठिर ने देखा कि गांव में ऐसे कई व्यक्ति हैं जो काम तो करना चाहते हैं किन्तु वृद्ध, बीमार या अपंग होने के कारण कड़ी मेहनत नहीं कर सकते अतः उन्होंने चौधरी से कहा—"काका ! हमें अपने गांव में इन बेकार हाथों को भी कुछ काम देना है। क्यों न इन सबके हाथ से कुटे-पिसे धनिया, हल्दी, नमक, गरम मसाले आदि की पुड़िया ही

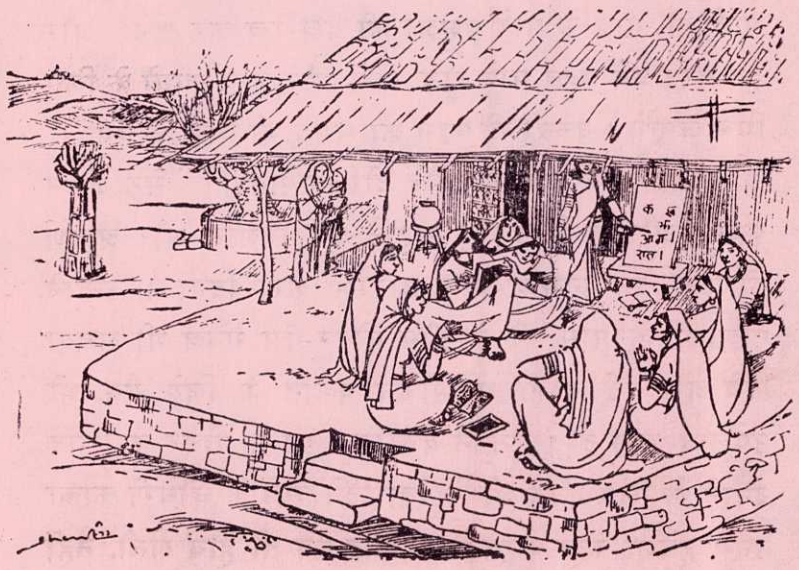

बनवाई जाएं। अगर-बत्तियां, पापड़, बड़ियां, अचार आदि भी इनके द्वारा तैयार करवाया जा सकता है। और उसे अपने सहकारी भण्डारों के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर बाहर भी भेजा जा सकता है। उसी दिन से चौधरी ने सहकारी लघु-उद्योग धंधों की नींव डाल दी। उन्होंने बहिनों के लिए सिलाई, बुनाई, कढ़ाई आदि सीखने की भी व्यवस्था की। गांव में मूंगफली तथा तिली की खेती अधिक होती थी। अतः इनसे तेल निकालने के संयंत्र भी लगवा दिये। कुछ ही दिनों में फूलपुर का माल अपनी शुद्धता, सही कीमत और सही मात्रा के लिए चारों ओर प्रसिद्ध हो गया और बाहरी गांवों तथा निकटवर्ती शहरों से भी उसे भारी मात्रा में मंगाया जाने लगा। नाम मात्र का लाभ लेने पर भी चार-पांच महीनों में फूलपुर के सहकारी भण्डार की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी हो गई। जिसके कारण गांव के विकास की गति और तेज हो गई। धन के अभाव में कोई काम बन्द न हुआ और न पंचों को दूसरे के सामने हाथ पसारने के लिए विवश होना पड़ा।

युधिष्ठिर ने देखा कि खेतों पर काम करने वाली महिलाओं के छोटे-छोटे बच्चे बिना देख-रेख के मेंड़ों पर धूप, वर्षा और ठंड में पड़े रहते हैं। वे भूख-प्यास से घंटों तड़पते रहते हैं। उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दे पाता। इधर महिलायें भी बच्चों के कारण ठीक तरह से काम में मन नहीं लगा पातीं। अतः उन्होंने चौधरी से कहा--काका ! अपनी उद्योगशाला के एक कोने में 'बाल बाड़ी' भी चालू कर दीजिए। एक होशियार-सी महिला की देख-रेख में ऐसे बच्चों को छोड़ दो, जो उनकी भूख-प्यास की चिन्ता रखे। उन्हें पढ़ाए-लिखाए, उनका मनोरंजन करे और उनकी

रचनात्मक प्रतिभा के विकास में सहयोग दे। उधर मातायें भी मन लगाकर खेतों-खलिहानों में काम कर सकें।" चौधरी ने उसी दिन से यह कार्य भी प्रारम्भ कर दिया।

एक दिन प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र से पता चला कि गांव में दमा, सांस, पेट और गुर्दों की बीमारी वाले अनेक लोग हैं। इनकी संख्या बढ़ती जा रही है। युधिष्ठिर ने कहा—"सदर ! इन सब रोगों का मूल कारण है—धूम्रपान और नशीले पदार्थों का सेवन। ये दोनों स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। मेहनत से कमाए हुए धन और पारिवारिक शांति को भी नष्ट करने वाले हैं।" उसी दिन से सदर ने इनके विरोध में भी एक आन्दोलन छेड़ दिया। वे घर-घर जाते और कहते—"दादा, काका, भैया, मामा, बेटे! तम्बाखू में कई प्रकार के ज़हर हैं। इसे न तो पियो, न खाओ और न हाथ से छुओ। जैसे धुएं से हमारा रसोई घर का छप्पर काला और मटमैला हो जाता है, वैसे ही धूम्रपान से हमारा

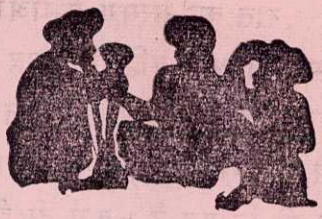

कलेजा काला और थोड़े समय बाद बेकार हो जाता है । इसके कारण हमारी सारी पाचन-क्रिया भी बिगड़ जाती है। हमारे फेफड़ों के छेदों में भी धुएँ की कालिख इकट्ठी हो जाती है, जिससे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मदिरा तो और भी बुरी चीज है । यह तो धन के साथ-

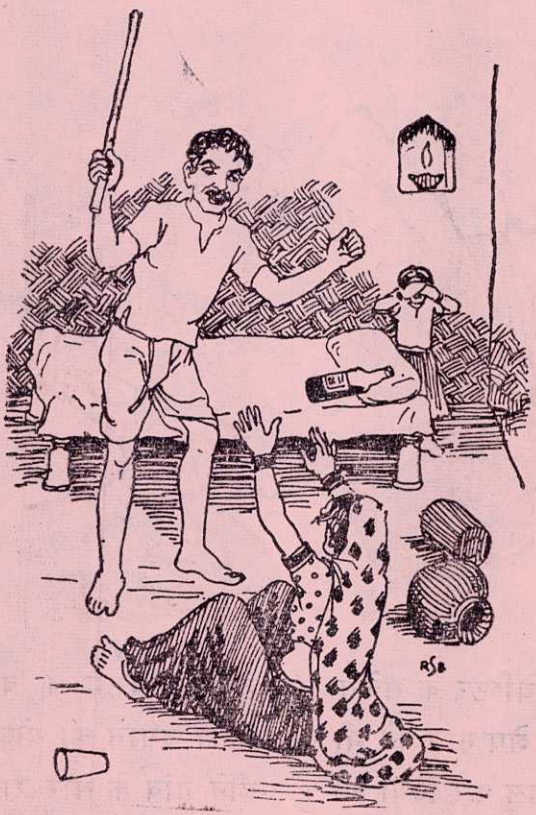

साथ हमारे विवेक और स्वास्थ्य को भी बुरी तरह से बर्बाद कर देती है । वह आदमी को पशु से भी गया-गुजरा बना देती है ।"

रात को सत्संग-सभाओं में शास्त्री जी लोगों को बताते "भाइयो और बहिनों ! यह संसार कर्ममय है। जो जैसे कर्म करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। कर्मों के अनुसार ही हमारा भाग्य और संस्कार बनते हैं। जीवन का सुख कर्म में ही निहित है। कर्म ही ईश्वर है। कर्म करना ही ईश्वर की पूजा करना है। स्वर्ग वहां है, जहां सुख है, शान्ति है, संतोष है ; अधिक सन्तान, दुःखी इन्सान छोटा परिवार, सुखी परिवार—"ये जीवन की प्रगति के सिद्धान्त हैं।"

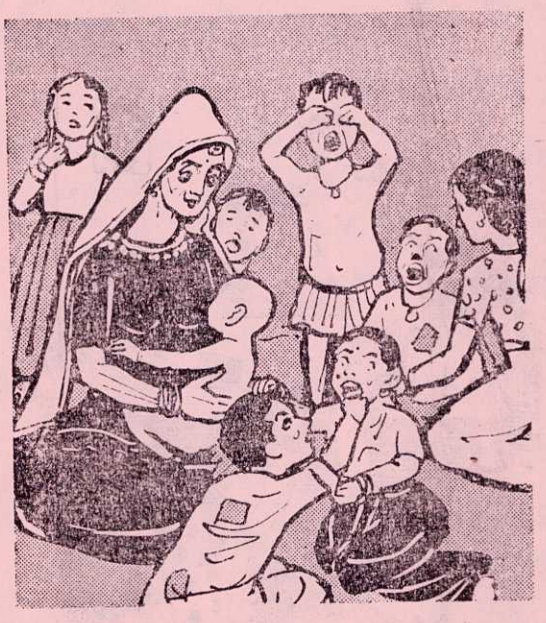

युधिष्ठिर के संकेत पर हरिजन बस्ती के बनते ही सदर ने शेष गांव को भी नये ढंग से बसाने की योजना पर काम चालू कर दिया था। उन्होंने गांव के सारे रास्ते भी चौड़े कराए। उनके आस-पास का कचड़ा दूर किया और रात के समय सड़कों पर प्रकाश की व्यवस्था भी कराई। गांव के बीचों-बीच उन्होंने एक सत्संग भवन भी बनवाया। यहां

पंचायत बैठती । पुस्तकालय, पंचायत का घर तथा अन्य कई प्रकार के मनोरंजनों की व्यवस्था भी यहीं की गई । शास्त्री जी ने यहीं एक योगशाला भी खोल दी । यहां बच्चे, युवक और प्रौढ़ सभी मिलकर आसन तथा प्राणायाम सीखते और इनके द्वारा अपने जीवन में आत्म-विश्वास, संयम तथा कार्य-कुशलता बढ़ाते । इन क्रियाओं के द्वारा उन्होंने अपनी बुरी आदतों पर भी नियंत्रण करना सीखा और रचनात्मक कार्यों की ओर वे अग्रसर होने लगे ।" इतना कह कर पंडित दुर्गानारायण एक क्षण के लिये रुके ।

"युधिष्ठिर महाराज ने फूलपुर को स्वर्ग बनाने के लिए और कौन-कौन से कार्य किये पंडित जी ? तभी वंशी पटेल ने पूछ लिया ।

"अरे भाई युधिष्ठिर महाराज को गलत मत समझो । वे सदा यही कहते रहे सदर ! खेती करना, चिट्ठी लिखना, विनती करना, खाज-खुजलाना आदि ये कुछ कार्य अपने हाथ से करने पर ही ठीक तरह से होते हैं । इसी तरह गांवों की उन्नति भी गांवों में रहने वाले ही करेंगे दूसरा कोई नहीं कर सकता । अधिक से अधिक वह धर्म और सत्य की बातें बता सकता है । कर्म और त्याग की प्रेरणा दे सकता है । घोर अन्धकार में दस-बीस कदम आगे भी चल सकता है; और यदि किसी से दीपक जलाते न बने तो वह दीपक भी जलाकर रास्ता बता सकता है । पर वह सारे गांव का जीवन तो नहीं जी सकता ?" पं० दुर्गानारायण ने कहा ।

दो वर्षों की छोटी-सी अवधि में ही बुरी तरह से मुरझाया फूलपुर ताजे खिले कमल की तरह मुस्कराने लगा था । शास्त्री जी तथा उनके बालकों ने साज-सफाई का काम अपने कंधों पर ले रक्खा था । अतः अब कहीं भी गंदगी

खोजने पर नहीं दिखाई देती थी। हर घर के सामने अब गेंदे, गुलाब, चांदनी, चमेली और सदाबहार के फूल, फूल रहे थे, जो वहां के लोगों की प्रसन्नता को व्यक्त करते थे।

होली के अवसर पर फूलपुर के पंचों ने मिलकर एक महायज्ञ करने का निर्णय लिया। इसमें शामिल होने के लिए १०८ गांवों को निमंत्रण भेजे गये। सत्संग भवन के पास एक विशाल यज्ञ मण्डप बनाया गया। उसी के पास बाहर से आने वाले अतिथियों के ठहरने की उत्तम व्यवस्था की गई थी। यज्ञशाला से लगा हुआ भण्डार गृह भी था, जहां गांव के तथा बाहर से आए हुए सारे लोग बिना किसी भेद-भाव के भोजन करते थे। गुलाब की कलियों की तरह खिली हुई ग्राम कन्यायें उन्हें भोजन परोसती थीं। जगह-जगह लगे हुए वन्दनवारों, झालरों और उड़ते हुए रंग-गुलाल के कारण फूलपुर इन्द्रपुरी की तरह दिखाई दे रहा था।

सत्संग भवन के एक ऊंचे मंच पर बैठे हुए शास्त्री जी सत्यनारायण की कथा सुना रहे थे—भाइयों और माताओं ये सहकारी स्थान ही आज हमारे तीर्थ स्थान हैं, मंदिर हैं। ये ही स्वर्ग के द्वार हैं। यही यज्ञ-स्थल है। इन की

पूजा ही सत्यनारायण की पूजा है। यहीं हमें अपने भेद-भावों और स्वार्थों का हवन करना है।

इस उत्सव में शामिल होने के लिए स्वर्ग से जय भी आ गया था। एक दिन प्रातःकाल उसने एकांत देखकर कहा—"महाराज ! आपका संकल्प आज पूरा हो गया है। स्वर्ग में धर्मराज यम और देवराज इन्द्र आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। रथ तैयार खड़ा है।"

"जय ! मेरा काम पूरा कहां हुआ। अभी तो आरम्भ हुआ है। ऐसे तो यहां लाखों गांव हैं, जो नरक की ज्वाला में जल रहे हैं। मुझे वहां भी पहुंचना है और भूले-भटके लोगों को स्वर्ग का मार्ग दिखाना है। तुम लौट जाओ जय ! यह पृथ्वी, यह कर्मलोक ही अब मेरा स्वर्ग है। इसी का नये ढंग से निर्माण करना मेरा धर्म है।" युधिष्ठिर ने कहा—

जय कुछ कहता, इसके पहले ही सदर के साथ हजारों आदमियों का एक समूह युधिष्ठिर की कांस की कुटिया के दरवाजे तक पहुंच चुका था। लोग चमत्कार की तरह देखते-देखते पूरे गांव की काया को बदल देने वाले महात्मा युधिष्ठिर की जय जयकार कर रहे थे। और उनके दर्शन के लिए आतुर हो रहे थे। युधिष्ठिर अपनी कुटिया से तत्काल बाहर आये और लोगों को शांत कर कहने लगे—"आप सब की प्रसन्नता ही मेरी प्रसन्नता है। यहां आप लोग जो भी परिवर्तन देख रहे हैं, उसका श्रेय यहां के पंचों को है। पंचों से भी अधिक यहां की जनता को है। आप उसकी जय जयकार कीजिए। पर खाली जय जयकार करने से कोई लाभ नहीं। मैं चाहता हूं आप सब भी प्रगति के ऐसे ही स्तम्भ बनिये, ऐसी ही एकता का परिचय दीजिए।

ऐसे ही सर्वोदय और ग्राम-स्वराज्य का आदर्श प्रस्तुत कीजिए, तभी यह यज्ञ सार्थक होगा।

मैं तो एक साधारण-सा यात्री हूं। थोड़े समय के लिए यहां रुक गया था। लगता है कि अब यहां मेरा काम पूरा हो गया है। अतः आज ही अपनी अगली यात्रा पर निकल पड़ूंगा। अब मुझे वहां जाना है, जहां अभी तक अज्ञान का राज्य है, जहां आपसी भेद-भावों की दलदल है। और जहां अभी तक मानवीय सभ्यता का सूर्योदय नहीं हुआ है।"

ऐसा कहते हुए युधिष्ठिर सचमुच उस जन-समूह को बीच से चीरते हुए पूर्व दिशा की ओर चल पड़े। उनके पीछे-पीछे चलता हुआ अपार जन-समूह ऐसा दिखाई देता था जैसे भगीरथ के पीछे स्वर्ग की गंगा उमड़ती हुई आ रही हो।

सामने आकाश में सिंदूरी रंग का सूर्य इन सब का स्वागत करने के लिए सुनहली किरणों के पांवड़े बिछा रहा था।

पं० दुर्गानारायण ने भी सामने की ओर देखा तो उन्हें भी सामने बैठे सभी लोगों के चेहरों पर संकल्प के कई सूर्य एक-साथ उदित होते हुए दिखाई दिये।

□ □ □

नव-साक्षरों के लिए

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ

के

अन्य प्रकाशन

१.	**आंसू बन गए फूल**—विमला लाल ...	1.50
२.	**सुख कहां ?**—बिमला दत्ता ...	2.00
३.	**मरजाद**—डॉ. सतीश दुबे ...	1.50
४.	**सपना**—अ. अ. अनन्त ...	2.00
५.	**आग और पानी**—डॉ. प्रभाकर माचवे ...	2.50
६.	**रधिया लौट आई**—कमला रत्नम् ...	3.00
७.	**जीवन की शिक्षा** [लोक कथायें]—नारायणलाल परमार	2.50
८.	**नई जिन्दगी**—डॉ. गणेश खरे ...	3.50
९.	**मेरे खेत में गाय किसने हांकी ?**—जोगेन्द्र सक्सेना	2.50
१०.	**बिटिया का गीत**—शिव गोविन्द त्रिपाठी ...	3.00
११.	**एक रात की बात**—इन्दु जैन ...	4.00
१२.	**कल्याण जी बदल गए**—अ. अ. अनन्त ...	3.00
१३.	**समाज का अभिशाप**—ब्रह्म प्रकाश गुप्त ...	2.50
१४.	**बढ़ते कदम**—विमला लाल तथा **शहर का पत्र गांव के नाम** —डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'	3.00
१५.	**भीड़ से घिरे चेहरे**—डॉ. महीप सिंह ...	2.00

प्राप्ति स्थान

17-बी, इन्द्रप्रस्थ मार्ग, नई दिल्ली-110002